श्री धनावंशी हित

धनावंशी चेतना की मासिक पत्रिका

वर्ष : 1 अंक : 9 सितम्बर 2020 मूल्य : 20 रु.

रामानन्द और अन्य मध्यकालीन संत

प्रमुख भारतीय दर्शन को समझें

धनावंशियों के तीर्थ

कर्म तत्त्व

।।श्री सालासर बालाजी के चरणो में वन्दन।।

सुखदेव स्वामी
कल्याणसर

GOLDEN BIRD

नथमल स्वामी
कल्याणसर

Shree Salasar Balaji Polysack Pvt.Ltd.

MFG. OF HDPE/LDPE/TARPOULIN

Unit-I
110/2 Ambuja Synthetic Mills Compound, B/H, Old Narol Court, Narol, Opp. Jyoti Nagar, Ahmedabad - 382405

Unit-II
Plot No 7A & 7B Soham Industrial Park, Bareja Mahijada Dholka Road , Village Mahijada, Tal. Daskroi, Dist. Ahmedabad 382425.

Office
Shree Salasar Balaji Polysack Pvt.Ltd.244/ Second Floor, New Cloth Market Sarangpur Ahmedabad

Mail ID-ssbjpahm@gmail.com ■ Web : shreesalasarbalaji.com

Contact : 09428732971, 09727735371

पावन सन्निधि
श्री ठाकुरजी महाराज
भक्त शिरोमणि श्री धनाजी

मानद परामर्श
परिव्राजक श्रीसीतारामदास स्वामी

सम्पादक एवं प्रकाशक
चेतन स्वामी

सहायक सम्पादक
प्रशांत कुमार स्वामी, फतेहपुर
श्रीधर स्वामी, सुजानगढ़
(अवैतनिक)

अकाउंट विवरण
Dhanavanshi Prakashan
A/c No. - 38917623537
Bank - State Bank of India
Branch - Sridungargarh
IFSC code - SBIN0031141

सम्पादकीय कार्यालय
श्री धनावंशी हित
धनावंशी प्रकाशन, कालूबास,
श्रीडूंगरगढ़-331803
(बीकानेर) राज.
M.: 9461037562
email:chetanswami57@gmail.com

सम्पादक प्रकाशक
चेतन स्वामी द्वारा प्रकाशित
तथा महर्षि प्रिण्टर्स, श्रीडूंगरगढ़
से मुद्रित।

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के हैं। उनसे सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। रचना की मौलिकता व वैधता का दायित्व स्वयं लेखक का है, विवाद की स्थिति में न्यायक्षेत्र श्रीडूंगरगढ़ रहेगा।

मूल्य : एक प्रति 20/- रु.
वार्षिक 200/- रु.

श्री धनावंशी हित

धनावंशी चेतना की मासिक पत्रिका

वर्ष : 1 अंक : 9 सितम्बर 2020 मूल्य : 20/- रुपये

आरती उतारां गुरू देव की ।
बलिहारी वांरै चरणां में बारम्बार ।
।। अन्तरा ।।
1 भाग भलेरा म्हारै गुरूजी पधारिया,
लियो जिण जाट घरां अवतार ।।
2 विप्र एक आय'र दीन्ही सेवा सालगराम की,
रीझ्या थांसूं बाळपणै में सरजनहार ।।
3 गुरु जी रामानन्द थानै दीक्षा दीन्ही प्रेम की,
पायो जांसों ज्ञान प्रबल उजियार ।।
4 गायां चरावण थांरै हाजर होंता सांवरो,
करता थांरै खेतां री रखवाली करता।।
5 बीज बिना ही थांरै खेतां मोती नीपज्या,
कीन्हो थे तो बीज तणों संतां रो सत्कार ।।
6 अलख जगाई थे तो जाति और समाज में,
दीन्हो सबनै ठाकुर री पूजा रो अधिकार ।।
7 युग युग में रखवाळी थे तो हरि भगतां री राखज्यो,
बिनवै थानै धनावंशी परिवार ।।
8 चेतन ज्योति थांरी घट घट में विराज सी,
रहसी थांरो गरीब दास होंशियार।।
आरती उतारां गुरू देव की।।

अनुक्रमणिका

* सम्पादकीय-
गलतफहमी में से गलतफहमी ही निकलती है/04
* समाचार-/05
* आलेख-
पांच वैष्णव दर्शन और विशिष्टाद्वैतवाद/06
धनावंशियों के तीर्थ/10
प्रमुख भारतीय दर्शन को समझे/12
कर्मतत्त्व/16
रामानन्द और अन्य मध्यकालीन संत/18
धनावंशी स्वामी समाज को महंत व्यवस्था के बारे में सोचना तो होगा/23
झाड़ेली गांव का धनावंशी ब्यौरा/25
* काव्य : भगवान श्री विष्णु का मनोहर ध्यान करें/09
* भजन /27
* आपके पत्र-आपकी भावनाएं/28

सम्पादकीय

गलतफहमी में से गलतफहमी ही निकलती है

अनुरोध

समझदार वही होता है जो गलतफहमी से शीघ्र मुक्त हो जाए। आज कोई मुझे जाट कहे तो मैं हैरान हो सकता हूं। बहुत बुरा लग सकता है क्योंकि मैं हूं धनावंशी और मुझे बताया जाए दूसरी जाति का। मुझ में एक भी आचरण ऐसा नहीं है, जिससे मुझे धनावंशी के अलावा,किसी दूसरी जाति के रूप में पहचाना जाए। मेरे दादा–परदादा– पिता को भी अगर कोई दूसरी जाति का कहे तो मैं उसका तीव्र विरोध करूंगा––क्योंकि वे इतने कट्टर धार्मिक व्यक्ति थे कि बाहर जाकर घर में प्रवेश करने पर अपने हाथ धुलवाने का आग्रह रखते। जिसने भी अपने पिता–दादा–पड़दादा को एक निष्ठावान वैष्णव के रूप में देखा है–उसके पूर्वजों को कोई धनावंशी के अलावा और कुछ कहे तो उसका चिड़ना एकदम जायज है। क्योंकि हमने अपने परिवार में धनावंश के शुद्ध सात्विक आचार ही देखे हैं। भूतकाल की पचीस पीढियों पूर्व की स्थितियों में हम जाना नहीं चाहते––पर जब कोई इतिहास की बात करता है तो शुरूआत जड़ से ही करनी पड़ती है। ऐसा ही विधान है। इतिहास में हमें अपनी मूल जाति का पता होना चाहिए। इसमें हीनता की बात नहीं होती, इतिहास के अपने सत्य हैं। पचीस पीढी पूर्व हमारे जिन जिन पूर्वजों ने धनाजी का अनुयायी होना स्वीकार किया–अच्छा किया––वे गुणी थे–महान थे। प्रभु भक्ति का मार्ग चुना। वे जिस दिन धनावंशी बने–उसके साथ ही उनकी जाति बदल गई। उसके बाद हमारे उन पूर्वजों को किसी ने जाट नहीं कहा। धनावंशी स्वामी सम्बोधन मिला। 540 लगभग साल पहले हमारे पूर्वज––जब तक धनाजी के अनुयायी बनने से पहले अगर जाट थे तो आज उसका क्या है? अब तो हम धनावंशी हैं। हमारी अच्छी समझ तो यह होनी चाहिए कि धनाजी ने हमें जाट जाति से बदलकर धनावंशी बना दिया। अगर हम धनाजी के अनुयायी नहीं बनते तो आज हमारी जाति जाट ही होती। संसार की कोई जाति अस्पृश्य नहीं होती। कोई छोटी नहीं होती। सबका अपना महत्व है। पर स्वाभाविक रूप से व्यक्ति अपनी जाति से अधिक प्रेम करता है,क्योंकि उसकी सारी नातेदारी उसी जाति में रहती है। आज हम धनावंशी हैं और धनावंश के कल्याण के बारे में सोचते हैं।

कृपाकांक्षी
चेतन स्वामी

धनावंश के समक्ष पहचान का संकट

यह कहते हुए संकोच होता है कि धनावंशी भाई अपनी पहचान भूल गए हैं। सजग धनावंशी अपने कठोर परिश्रम से उन्हें भूली बातें याद करवा रहे हैं। आपका साधुवाद।

वर्तमान में धनावंश –अनेक विसंगतियों का शिकार है। क्यों शिकार हैं, इसे समझने का यत्न करें।

संसार में सम्प्रदाय रूप में कोई भी जाति है,तो आप देखेंगे उसका अपना सम्प्रदाय विषयक प्रचार एवम् उदबोधन तंत्र बहुत मजबूत होता है। सम्प्रदाय की धार्मिक अवधारणाओं को प्रचारित करने का काम महंतों का होता है। पर दुर्भाग्य से धनावंश का सम्प्रदाय स्वरूप उसी दिन खत्म हो गया, जिस दिन बदरीदासजी गोलिया जैसे महंत का देवलोक गमन हुआ। उनके गुरुजी और उन्होंने धनाजी और धनावंश का प्रचार करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उनके बाद के महंतों ने ऐसा कोई प्रयास नहीं किया और वे अपने कर्तव्य–पथ से सर्वथा विमुख हो गए। उनके भीतर अपने पंथ के प्रति कोई दिलचस्पी और आग्रह नहीं रहा। हमारे महंत अपने कर्तव्य से इतने चुक गए कि उनके होने न होने का औचित्य ही समाप्त हो गया। सामान्य धनावंशी को ये बाद के महंत यह बताने में विफल रहे हैं कि हम धनावंशी क्यूं हैं या धनावंशी क्यों कहलाते हैं। ऐसी पतित स्थिति भी हम धनावंशियों को कचोटती नहीं है। हमारी स्थिति स्मृति लोप जैसी है। जैसे कुछ नहीं समझते। न कोई हलचल न बोलना। ऐसा कब तक चलेगा भाइयों हमारे सम्प्रदाय में? हमें अगर अपने समाज को आगे ले जाने की चेष्टा करनी है तो बहुत से काम नए सिरे से करने होंगे।

समय सब कुछ बदल देता है, जरूरत सिर्फ सब्र की है।

समाचार

नागौर क्षेत्र के धनावंशी बंधुओं ने धुआंकलां की यात्रा की

21 सितम्बर 2020 को श्री राधेश्याम गोदारा के नेतृत्व में श्री बस्तीराम स्वामी, प्रेमदास खिंयाला आदि बंधुओं ने धनाजी महाराज के स्थल धुआंकलां की यात्रा की। इस यात्रा के सम्बन्ध में श्री प्रेमदास खिंयाला ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा––भक्त शिरोमणि गुरुदेव धनाजी महाराज के जन्म स्थान गांव धुवांकला में उनके खेत में बने छोटे से चबूतरे पर धनाजी महाराज की मूर्ति उनके इष्टदेव श्री ठाकुरजी भगवान सालगरामजी की मूर्ति के साथ यह चबूतरा सदियों पूर्व का रहा है। गांव धुवांकला में जाट जाति का एक ही घर था। वहां पर धनाजी की माता गंगा देवी के अलावा और कोई उत्तराधिकारी नहीं था। अतः धनाजी के पिताजी रामेश्वरजी अपनी ससुराल में ही रहते थे। भगवत कृपा से उन्हीं के घर भक्त शिरोमणि धना जी महाराज का जन्म हुआ और उनके एक बहन भी थी। धनाजी महाराज शादीशुदा थे पर उनके कोई संतान नहीं हुई।

सदियों तक लगभग 500 साल तक यह स्थान सुना रहा, किसी भी जाति संप्रदाय ने इस पर अपना अधिपत्य नहीं जताया। इस स्थान पर धनावंशी स्वामी समाज ही उत्तराधिकारी होना चाहिए था। किंतु कभी किसी ने दावा ही नहीं किया। पर धनावंशी समाज एवं उनके धर्म गुरु महंतों ने सदैव ही गुरु धनाजी महाराज से दूरियां बनाए रखी। इस बात को सदैव ही छिपाए रखा कि धनाजी महाराज हमारे पंथ प्रवर्तक हैं। अतः धीरे– धीरे किसी को यह भी पता नहीं रहा कि धनावंशी गुरुदेव धनाजी महाराज के अनुयायी हैं। और आज वर्तमान में खुद धना वंश को भी यह पता नहीं है कि हम कौन हैं? तो फिर अन्य जाति संप्रदाय वाले यह कैसे माने कि आप धनावंशी स्वामी समाज ही गुरुदेव धनाजी महाराज के अनुयायी हैं। बहुत ही विकट परिस्थिति है। बहुत सदियां बीत गई, इतने लंबे समय के इंतजार के बाद भी इस स्थान की सुध लेने कोई नहीं आया। कोई पुत्र अगर कहे कि मैं अपने पिता को पिता नहीं मानता। मुझे उनकी संपत्ति नहीं चाहिए। तो क्या कोई जबरदस्ती उसकी सहमति के बिना उसको उत्तराधिकारी घोषित कर सकता है क्या? कतई नहीं। पिता अगर चाहे तो अपने पुत्र के अलावा दत्तक पुत्र को भी अपना उत्तराधिकारी घोषित कर सकता है। गुरुदेव धनाजी महाराज

की आंखें सदियों तक अपनों का इंतजार करती रहीं। सिखों के वहां गुरुद्वारा बनाने के बाद ही इस स्थान की लोकप्रियता बढ़ने लगी और भी कई महापुरुष वहां आए। पर धनाजी महाराज ने किसी को भी अपने उत्तराधिकारी के तौर पर स्वीकार नहीं किया। उनकी आंखें आज भी अपनों का इंतजार कर रही है। इन 35 वर्षों में वहां पर बहुत कुछ घटनाक्रम चला।

गांव वालों को यह शंका होने लगी कि कोई इस जगह पर अपना आधिपत्य कायम ना कर लें। इसी के चलते 3 वर्ष पूर्व गांव के सरपंच बनवारी जी चौधरी जो डोगीवाल जाट जाति से हैं और उनके परम मित्र सारा भाई जी खाती ने मिलकर इस स्थान को सुरक्षित रखने के लिए एक ट्रस्ट बनाया। और इस ट्रस्ट के अध्यक्ष बनवारी जी चौधरी एवं उपाध्यक्ष सारा भाई जी खाती है। दोनों ही बड़े नेक दिल इंसान हैं। और विगत 35 वर्षों में ही धना जी के इस चबूतरे को गांव वालों ने मिलकर एक मंदिर का रूप दिया है।

सदियों तक इंतजार करने के बाद भी धनावंशियों ने अपने पंथ प्रवर्तक गुरु की पीठ गद्दी की सुध नहीं ली। और जब वह जागे तब तक बहुत देर हो चुकी थी। पर मुझे तो इस बात की खुशी है कि हमारे पंथ प्रवर्तक गुरुदेव धनाजी महाराज हमारा ही इंतजार करते रहे। अपनों के अलावा आज तक उन्होंने अपना उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं किया और भला हो इन ट्रस्टियों का जिसके चलते आज यह स्थान सुरक्षित है।

वक्त बड़ा धारदार होता है, कट तो जाता है, पर बहुत कुछ काटने के बाद।

पांच वैष्णव दर्शन और विशिष्टाद्वैतवाद

जीव चेतन, अणुरूप तथा ब्रह्मका शरीर है। जीव और ब्रह्ममें स्वगत-भेद है जीव और ब्रह्म दोनों चेतन, स्वयंप्रकाश, ज्ञानाश्रय, नित्य, देहादिसे भिन्न है। जीव कर्ता, भोक्ता, ब्रह्मका शरीर तथा दास है। जीवकी ब्रह्मसे कभी अभिन्नता नहीं होती।

अद्वैतवाद साधन-चतुष्टय, श्रवण-मनन निदिध्यासनसे अपरोक्षानुभूतिका प्रतिपादन लेकर प्रवृत्त हुआ; किंतु मानव-प्रकृति तो अधोगामिनी है। आचारसे ज्ञानकी श्रेष्ठताके प्रतिपादनने केवल बौद्धिक ज्ञानको महत्त्व दे दिया। आचार छूट गया। इन्द्रियोंके विषयोंका सेवन तो व्यवहार माना जाने लगा और बुद्धिको महत्ता मिल गयी। अद्वैतबोध भी अनुभूतिसे उठकर दूसरी विद्याओंकी भांति एक बौद्धिक ज्ञान हो गया। जीव नित्यमुक्त शुद्ध ब्रह्म है, उसे कोई आचार बाधित नहीं करता। विषयोपभोगादि तो व्यवहार है, कल्पना है, अज्ञानकी प्रतीति है। सदाचार, उपासनादि सब अज्ञान हो गये। देहात्मवादी नास्तिक तथा बौद्धिक वेदान्तीमें केवल यह अन्तर रहा कि एक मूलतत्त्वको जड़ कहता है, दूसरा चेतन। शेष मान्यताएँ दोनोंकी एक हो गयी। **कलौ वेदान्तिनः सर्वे-शास्त्र** ऐसे ही वेदान्तको कलिका धर्म बतलाता है। आज वह प्रत्यक्ष है।

व्यवहार एवं व्यावहारिक सुख जबतक अपेक्षित हैं, जब तक उनकी प्रतीति है, तब तक जिसकी कल्पनाने उनका सर्जन किया है, हम उसके अधिकारक्षेत्रमें हैं। यदि ये भोग हमारी कल्पना होते तो हमें उनको पानेका प्रयत्न न करना पड़ता। हम कल्पनासे उनकी सृष्टि कर लेते। जिसके कल्पना-क्षेत्रमें

कुछ चीजे अकड़ की वजह से नहीं बल्कि आत्मसम्मान के लिए छोड़नी पड़ती है।

हम व्यवहार चलाते हैं, वह हमारा रास्ता है। हम उसकी कृपासे उस क्षेत्रसे बाहर हो सकते है। उसके क्षेत्रमें रहकर उसके नियमोंको भंग करनेपर दण्ड मिलेगा ही। इस सत्य एवं आचारकी प्रतिष्ठाके लिए महाप्रभु रामानुजाचार्यने विशिष्टाद्वैत–मतका प्रवर्तन किया।

चित्–अचित्–विशिष्ट समग्र तत्त्व ही ब्रह्म है। ब्रह्मके चेतन–अंशसे चित्त (जीव) और अचित्से जड़ (प्रकृति) हुई है। ब्रह्म जगत्का निमित्त तथा उपादान कारण है। जीव ब्रह्मका ही अंश है। भगवान् नारायण ही इस समस्त जड़–चेतन सत्ताके स्वामी हैं। वे निखिलगुणगणैकधाम नित्यवैकुण्ठविहारी हैं। उनकी शरणमें जानेसे ही जीवकी मुक्ति होती है। प्रपति (शरणागति) ही मोक्षका सर्वोत्तम साधन है। जीव ज्ञाता है। ज्ञान जीवका धर्म है। वह ज्ञानस्वरूप नहीं है। जीव और ईश्वर नित्य भिन्न है। यथावस्थित व्यवहारानुगुण ज्ञान ही प्रमा है। निर्विकल्प और सविकल्प दोनों प्रकारके ज्ञान विशेषतायुक्त तत्त्वके ही होते हैं। जिसमें कोई विशेषता न हो, उसका ज्ञान नहीं होता। आत्मा, मन, इन्द्रिय तथा विषय–संयोग–ये ज्ञानके हेतु हैं। जो कर्म–सम्बन्धी ज्ञानसे सम्पन्न है, वही ब्रह्मजिज्ञासाका अधिकारी है।

ब्रह्म सगुण एवं सविशेष है, क्योंकि उसका ज्ञान होता है। यह श्रुति का मत है। जगत् ब्रह्मका परिणाम है। उपासनासे अज्ञानकी निवृत्ति ही जीवका प्रयोजन है। ब्रह्म श्रीनारायण अपनी योगमाया–शक्तिसे समन्वित रहकर कर्मफलदाता, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी ईश्वररूपसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, संहारके कारण हैं। पर, व्यूह, विभव अन्तर्यामी और अर्चा–इन विग्रहोंमें जीवको उनकी उपलब्धि होती है। उन श्रीनारायणके अवतार कर्मके कारण नहीं होते। वे स्वेच्छासे ही अवतार धारण करते हैं। उनमें विकार नहीं होता। जीव चेतन, अणुरूप तथा ब्रह्मका शरीर है। जीव और ब्रह्ममें स्वगत–भेद है जीव और ब्रह्म दोनों चेतन, स्वयंप्रकाश, ज्ञानाश्रय, नित्य, देहादिसे भिन्न है। जीव कर्ता, भोक्ता, ब्रह्मका शरीर तथा दास है। जीवकी ब्रह्मसे कभी अभिन्नता नहीं होती। अप्राकृत चिन्मय शरीरसे बैकुण्ठधाममें निवास की प्राप्ति ही मुक्ति है। यह मुक्ति ब्रह्मकी कृपासे उनकी प्रपत्तिद्वारा ही प्राप्त होती है।

विशिष्टाद्वैतमत शरणागति–प्रपत्तिका मार्ग है। आराध्यके अनुकूल संकल्प और प्रतिकूलका त्याग प्रपत्ति का स्वरूप माननेका यह निर्विवाद अर्थ हो गया कि शास्त्र विपरीत समस्त कर्म त्याज्य हैं और शास्त्राचार ही विहित है। क्योंकि शास्त्र ही भगवान्के आदेश हैं। शास्त्रके अतिरिक्त हम उनकी अनुकूलता जान सकें, इसका कोई उपाय ही नहीं। नियम बड़ा उच्च है; किंतु मनुष्यका स्वभाव नियमका दुरुपयोग करना–हासोन्मुख होना है। आचार्यमतके बदले यह आचारियोंका मत कहा जाने लगा। प्रपत्ति–शरणागतिका मुख्य अंश–भाव गौण हो गया और क्रिया ही प्रधान हो गयी। शास्त्रका बाह्याचार अपनी सीमाको पार कर गया और भावकी उपेक्षा हो गयी। फलतः उपासना, जो मुख्य लक्ष्य थी, विशेष प्रकारकी क्रियाओंमें बद्ध हो गयी। इस स्थितिमें शेष वैष्णव मतोंका प्रसार हुआ।

द्वैतवाद

महाप्रभु श्रीमध्वाचार्य द्वारा प्रसारित द्वैतवाद पूर्णप्रज्ञ–दर्शन कहा जाता है। इस मतका संक्षिप्त सार है–जीव और ब्रह्म–ये दो नित्य पृथक सताएँ हैं। जीव अणु एवं दास है और ब्रह्म सगुण, सविशेष, स्वतंत्र। जीवका परमार्थ है सालोक्यादि मुक्तियोंमें किसीकी प्राप्ति। जीव एवं ब्रह्ममें साम्यबोध भ्रम एवं अपराध है। दृश्य–जगत् सत्यसे अभिन्न है। विकारी और परिवर्तनशील होनेपर भी जगत् मिथ्या नहीं है। क्योंकि असत्यका ज्ञान नहीं हुआ करता। ज्ञान ज्ञाता और ज्ञेयके अधीन है। ज्ञानकी चिन्तनसे भिन्न स्थिति नहीं है। अतः ज्ञान सदा सविकल्प ही होता है। ज्ञान आपेक्षिक है। ज्ञान ही ज्ञेयका प्रतिपादक एवं प्रधान प्रमाण है। ब्रह्म शास्त्रैकगम्य है। वह पूर्णतः वाणीका विषय नहीं होता। भाववस्तु, गुण, क्रिया, जाति, विशेषत्व, विशिष्ट, अंशी, शक्ति, सादृश्य और अभाव–ये दस पदार्थ हैं। भाववस्तु दो प्रकारकी है–चेतन और अचेतन। परमतत्त्व ब्रह्मा भगवान् विष्णु हैं। भक्ति, त्याग, ध्यान–ये साधन हैं जीवके लिए, जिनसे वह मुक्त होता है।

द्वैताद्वैतवाद

महाप्रभु श्रीनिम्बार्काचार्यने द्वैत एवं अद्वैत

जन्म निश्चित है, मृत्यु भी निश्चित है, अगर कर्म अच्छे है तो स्मरण भी निश्चित है।

दोनोंका सामञ्जस्य करनेवाला प्रकाश जगत्को दिया–जगत् ब्रह्मका परिणाम है। ब्रह्म परिणाम होनेपर भी वह विकृत नहीं होता। ब्रह्म सर्वशक्तिमान् है। उसका सगुण भाव मुख्य है। जीव तथा जगत्–ये दोनों ब्रह्मके परिणाम हैं। ये ब्रह्मसे पृथक् भी है और अपृथक् भी। जगदतीतरूपसे ब्रह्म निर्गुण है। ब्रह्म जगत्का निमित्त–उपादान कारण है। जीव ब्रह्मका अंश है, उससे भिन्न भी और अभिन्न भी। जीवका स्वरूप अणु है। मुक्त जीव अपनी तथा जगत्की ब्रह्मसे अभिन्नताका अनुभव करता है मुक्तिका साधन केवल उपासना है।

शुद्धाद्वैतवाद

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यने जगत्के मिथ्यात्यका खण्डन करके उपासनाकी प्रतिष्ठाकी है। श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं। वे निर्गुण, निर्विशेष, कर्ता, भोक्ता, निर्विकार, गुणातीत, समस्त विरुद्ध धर्मोके आश्रय, संसारके धर्मोंसे रहित तथा जगत्के उपादान हैं। जगत् सत्य है। वह कार्य है। ब्रह्मसे अभिन्न उनकी परिणति है, क्योंकि ब्रह्म अविकृत परिणामी है। जगत्में पदार्थोंका आविर्भाव एवं तिरोभाव होता रहता है। जीव शुद्ध तथा अणुरूप है। जीवके लिए ब्रह्मसे प्रीति करना ही श्रेष्ठ मार्ग है। इस प्रीतिकी चरम परिणति है श्रीकृष्ण में पतिभाव की प्राप्ति। यह भगवदनुग्रह (पुष्टि) से होती है। ब्रह्म का विवेचन शास्त्रके द्वारा ही सम्भव है।

अचिन्त्यभेदाभेदवाद

श्रीकृष्ट सत्य हैं, इतना जानना ही जीवके लिए पर्याप्त है–महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवके इस भावको अचिन्त्यभेदाभेद भावका दार्शनिक रूप दिया। महाप्रभुने श्रीमद्भागवतको ही गीता, उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्रोंका भाष्य माना था; अतः प्रस्थानत्रयीपर भाष्य न करके भागवतरूप भाष्यसे ही यह दर्शन पुष्ट हुआ है। बहुत पीछे जाकर ब्रह्मसूत्रपर भाष्य भी रचा गया।

ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल और कर्म–ये पाँच तत्व हैं। शास्त्र वाचक हैं और ईश्वर वाच्य। ईश्वर ज्ञान शास्त्रसे ही होता है। ब्रह्मतत्त्व सगुण सविशेष श्रीकृष्ण ही हैं। वे स्वतंत्र, सर्वज्ञतादि समस्त गुणोंसे युक्त, जीवको भोग एवं मोक्ष देनेवाले हैं। वे निर्गुण हैं, क्योंकि उनमें कोई प्राकृत गुण नहीं। उनमें सभी अप्राकृत गुण हैं। संवित्, सन्धिनी और ह्लादिनी–ये तीन शक्तियाँ हैं उन सच्चिदानन्द ब्रह्म श्रीकृष्णकी। जगत्त ब्रह्मका परिणाम है। यह सत् किन्तु अनित्य है। ईश्वर, जीव, काल और प्रकृति–ये चार तत्व नित्य है। प्रकृति ब्रह्मकी शक्ति है, त्रिगुणात्मक है, नित्य है। कर्म जड़ है। वे ईश्वरकी शक्तिरूप हैं। जीव अणु है। वह ब्रह्मका भोग्य है प्रेमके द्वारा श्रीकृष्णका सान्निध्य प्राप्त कर लेना ही जीवकी मुक्ति है।

अद्वैतवादके अतिरिक्त शेष सब वैष्णव दर्शन उपासनाकी सिद्धिके लिए हैं। अतः इनमें जगत्की सत्यता तथा ब्रह्मके सविशेषरूपका प्रतिपादन है। प्रस्थानत्रयीके ही ये सब भाष्य हैं, अतः भाष्यरूप दर्शनोंमें मौलिक समानता तो होनी ही चाहिए। आचार्योंने साधनों की पुष्टिके लिए दर्शनका विस्तार किया है। अद्वैतवाद ज्ञानयोगकी पुष्टिके लिए और वैष्णवदर्शन उपासनाकी पुष्टिके लिए हैं। इनमेंसे प्रत्येक सम्प्रदाय अपनी अनादि परम्परा मानता है। आद्याचार्यका अर्थ केवल उस मतका प्रस्थानत्रयी भाष्य करके प्रचार करनेवाले महापुरुषसे है। उन्होंने सिद्धांतकी सृष्टि की, ऐसा न तो वे मानते और न उनके अनुयायी। सत्य दस बीस प्रकारका नहीं हो सकता; किन्तु जब हम वाणीमें उसे व्यक्त करते हैं, तब हमारे दृष्टिकोण एवं वाणीके भेदसे वह विविधरूप हो जाता है। अचिन्त्यरूपा माया–शक्ति, अवाङ्मनसगोचर परम–तत्त्व–ये सबको मान्य हैं। इनकी उपलब्धि, इनकी अनुभूतिके मार्ग भिन्न–भिन्न होंगे अधिकारीके अनुरूप। जिस अधिकारका प्रतिपादन होगा, उसके दृष्टिकोणसे तत्त्वका व्यक्तिकरण भी होगा। जैसे अधिकार–भेदसे बने पुराणोंमें परमतत्त्व कहीं शिव, कहीं शक्ति, कहीं विष्णुके रूपमें सर्वोपरि प्रतिपादित हुआ है, वैसे ही आचार्योंके सिद्धान्तोंका भेद भी अधिकार–पुष्टिके लिए प्रतिपादित हुआ है, उनमें वस्तुतः कोई अन्तर नहीं।

●●●●●

व्यक्तित्व की भी अपनी वाणी होती है, जो कलम या जीभ के इस्तेमाल के बिना भी, लोगों के अंर्तमन को छू जाती है।

भगवान श्री विष्णु का मनोहर ध्यान करें

वज्र, ध्वजा, अंकुश, सरसिजके मङ्गलमय चिह्नोंसे युक्त।
उभरे हुए अरुण शोभामय नख-शशि-किरणोंसे संयुक्त।।
चिन्तन कर्ताओंके हृदयोंका जो हरते तम-अज्ञान।
श्रीहरिके उन चरण-सरोजोंका मनसे नित करिये ध्यान।।
जिनकी धोवनसे निकली अति पावन भागीरथी उदार।
शिव हो गये परम शिव जिसके शुचि जलको निज मस्तक धार।।
ध्याताओंके पाप-पर्वतोंपर निपतित जो वज्र समान।
श्रीहरिके उन चरण-सरोजोंका मनसे करिये चिर ध्यान।।
विधि-जननी श्रीलक्ष्मीजी जिनको अपनी गोदीपर धार।
जलज-लोचना देव-वन्दिता करती जिन्हें हृदयसे प्यार।।
कान्तिमान् निज कर-कमलोंसे लालित करती अति सुख मान।।
उन भव-भय-हर हरिके दोनों घुटने पिंडली शोभा-खान।।
जङ्घा बलनिधि, नीलवर्ण अलसीके कुसुम-सदृश सुन्दर।
परम सुशोभित होती हैं जो ज्ञान-धाम खगपति ऊपर।।
रुचिर नितम्ब-बिम्ब युग पावन पीताम्बरसे परिवेष्टित।
स्वर्णमयी कञ्चीकी लड़ियोंसे जो रहते आलिंगित।।
भुवन-कोश-गृह उदर-देशमें, नाभि-कूप सौन्दर्य-निदान।
ब्रह्माके आधार विश्रमय वारिजका उत्पत्तिस्थान।।
मरकत-मणि-समान दोनों स्तन वक्षःस्थलपर चमक रहे।
शुभ्र हारकी किरणावलिसे गौरवर्ण हो दमक रहे।।
पुरुषोत्तम हरिका मुनि-जन-मोहन विशाल अति उर उन्नत।
नयन-हृदयको सुखदायक लक्ष्मीका जहाँ निवास सतत।।
अखिल लोक-वन्दित श्रीहरिका कम्बुकण्ठ शोभा-आगार।
परम सुशोभित करता कौस्तुभ-मणिको भी अपनेमें धार।।
राजहंस-सम शंख सुशोभित कर-पंकजमें दिव्य ललाम।
शत्रुवीर-रुधिरारुक्त गदा हरिकी प्रिय कौमोदकी सुनाम।।
वनमाला शोभित सुकण्ठमें मधुप कर रहे मधु गुंजार।
जीवोंके मलरहित तत्वसम कौस्तुभमणि अति शोभा-सार।।
भक्तानुग्रहरूपी श्रीविग्रहका मुख-सरोज मनहर।
सुघड़नासिका, कानोंमें मकराकृति कुण्डल अति सुन्दर।।
स्वच्छ कपोलोंपर कुण्डल-किरणोंका पड़ता शुभ्र प्रकाश।
इससे मुख-सरोजकी सुन्दरताका होता और विकास।
कुञ्चितकेश-राशिसे मण्डित मुख सब दिक् मधुमय करता।।
निज छविद्वारा मधुकर-सेवित कमल-कोशकी छवि हरता।
नयन-कमल चञ्चल विशाल हरते उन मीनद्वयका मान।।
कमल-कोशपर सदा उछलते बनते जो शोभाकी खान।
उन्नत भृकुटि सुशोभित हरिके मुख-सरोजपर मन-हरण।
नेत्रोंकी चितवन अति मोहिनि सर्व सुखोंकी निर्झरण।।
बढ़ती रहती सदा प्राप्तकर प्रेम प्रसाद-भरी मुसकान।
विपुल कृपाकी वर्षा करती हरती त्रय तापोंके प्रान।।
श्रीहरिका मृदु हास मनोहर अति उदार शरणागत-पाल।
तीव्र शोकके अश्रु-उदधिको पूर्ण सुखा देता तत्काल।।
भूमण्डलकी रचनाकी मायासे प्रभुने मुनि-हित हेतु।
कामदेवको मोहित करने, तो तोड़ा करते श्रुति-सेतु।।
तदनन्तर हरिके मन-मोहक हँसने का करिये शुभ ध्यान।
जिससे अधर ओष्ठकी विकसित होती अरुण छटा सुख-खान।।
कुन्द-कली-से शुभ्र दाँत उससे कुछ अरुणिम हो जाते।
हरिकी इस शोभासे जगके संस्कार सब खो जाते।।

ईर्ष्या की वजह से हम दूसरों से अपनी तुलना करने लग जाते है,
और अपने अंदर की खूबियों को भूल जाते है।

धनावंशियों के तीर्थ

जहां भी, जिस तीर्थ में जाना होता है, वहां जाकर अगर हमारा भगवद् प्रेम बढ़ता है तो तीर्थों में जाना शुभ है, तीर्थों में सात्विक भाव से योग्य पात्र को दान करना चाहिए। ब्राह्मण भोजन और पितृ तृपण तो अवश्य करना चाहिए। मौज-शौक या पिकनिक मनाने के लिए तीर्थों में कभी नहीं जाना चाहिए। तीर्थों के दौरान पति-पत्नी को सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है

धनावंशी स्वामियों के तीर्थ कुछ अलग होते हैं, ऐसी बात नहीं है। परन्तु धनावंशी स्वामी-वैराग्य से ओत-प्रोत तथा प्रभु भक्ति की लालसा से उत्पन्न एक जाति समूह है। वैष्णव धर्म को अंगीकार करने वाली इस जाति की अपनी कुछ विशिष्ट निष्ठा कतिपय तीर्थ स्थलों में है।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन का चरम लक्ष्य भगवद् प्राप्ति का है, इसलिए प्रभु भजन ही जीवन के कल्याण की परमौषधि है। भगवद् ज्ञान के लिए संत सन्निधि आवश्यक है। पवित्रात्मा साधुओं के संग से विषयासक्ति मिटती है और प्रभु प्रेम जागृत होता है। तीर्थों में पवित्र साधुओं के दर्शन तथा पवित्र जल में स्नान एवं देवमूर्तियों के दर्शन, पूजन-अर्चन का सौभाग्य प्राप्त होता है।

तीर्थ यात्रा के लिए कहा गया है कि घर की आसक्ति का सर्वथा परित्याग कर तीर्थयात्रा करनी चाहिए। तीर्थयात्री के मन में सदैव भगवद् स्मरण रहे। बहुत थोड़े से सामान के साथ तीर्थ यात्रा करनी चाहिए। तीर्थ यात्रा में सादगी बहुत आवश्यक है। अनावश्यक झमेलों का साथ लेकर तथा केवल प्राकृतिक दृश्यों को देखकर मनोरंजन प्राप्त करने के दृष्टिकोण से की जाने वाली तीर्थयात्रा फलदायी नहीं कही जाती। शरीर की निरोगता की दशा में ही तीर्थ यात्रा करनी चाहिए। तीर्थयात्रा का एक उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नति है। सादगी तथा पवित्र भाव से की जाने वाली तीर्थ यात्रा फलदायी होती है।

शास्त्रों में तीर्थ के बहु प्रकार बताए गए हैं। सत्य, क्षमा, इन्द्रिय नियंत्रण, दान, संतोष, ज्ञान, धैर्य, तप आदि को भी तीर्थ ही कहा गया है अन्त:करण की शुद्धि को श्रेष्ठ तीर्थ बताया गया है। पवित्र जगहों में जल स्नान कर लेना मात्र ही तीर्थ नहीं है। अगर मन में दुर्भाव ज्यों के त्यों मौजूद हैं तो समस्त तीर्थ करने के उपरांत भी व्यक्ति पापी ही बना रहता है। तीर्थों में व्यक्ति मानसिक मैल को धोने जाता है। ऐसा सम्भव नहीं है कि चित्त शुद्धि करे नहीं और तीर्थों में डुबकी लगाता जाए। हमारी अनेक उक्तियों में कहा भी गया कि मन मैला तन उजला रहे तो भी क्या? यों तो जो जलचर हैं, वे सभी पवित्र जल में ही वास करते हैं, पर क्या वे तर जाते हैं? अपने भीतर की मलीनता को धोने के लिए मन में वैराग्य के भाव

आपको जानने वाले अनेक होंगे, पर आपको समझने वाले कम ही होंगे।

आवश्यक हैं। जाति से वैरागी होने से कुछ नहीं होता। वैराग्य का तात्पर्य होता है-निर्मलता। निर्मल चित्त वाले लोग परमात्मा की प्रथम पसंद है। मन के दोषों के निवारण का दृढ़ निश्चय कर तीर्थ यात्रा करें। शास्त्रों में उल्लेख है कि मदिरा से भरे हुए पात्र को भले ही ऊपर से कितना ही धोवें, वह शुद्ध नहीं हो सकता। इसी प्रकार दूषित अन्त:करण वाला व्यक्ति कितना ही गंगा स्नान करें, उसके पाप रतिभर कम नहीं होते।

स्कंद पुराण में श्लोक है-

ध्यान पूते ज्ञानजले राग द्वेष मलापहे।
य: स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्।।

अर्थात् ध्यान से पवित्र हुआ, ज्ञान रूपी जल के द्वारा जो राग-द्वेष रूपी मल को मानस-तीर्थ में स्नान कर धो डालता है, वही परमगति को प्राप्त करता है, यानि मोक्ष की सम्प्राप्ति करता है।

तीर्थ का फल भगवद् भक्त को मिलता है। जिसका चित्त निरंतर भगवान में है, तथा जो अपने प्रत्येक कर्म से भगवान को ही प्रसन्न करता एवम् तीर्थ में भी वह अपने परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए जाता है। तीर्थ यात्रा में जो अनुकूलता-प्रतिकूलता की परवाह नहीं करता, जो अहंकार विमुक्त होकर तीर्थ करने जाता है, उसे तीर्थ का उत्तम फल प्राप्त होता है।

तीर्थयात्री और पाखण्ड का कोई मेल नहीं है। निर्मल चित्त व्यक्ति तीर्थ को अपना सौभाग्य मानता है तथा इसमें वह भगवद् कृपा को देखता है। तीर्थ यात्रा को अपना उद्योग नहीं समझना चाहिए। भगवान की महत्ती कृपा का फल है तीर्थ यात्रा। ऐसे सुयोग परमात्मा ही उत्पन्न करते हैं। अश्रद्धालु के लिए तीर्थ उतना फलदाई नहीं होता। कहते हैं-शुद्ध मन से तीर्थ यात्रा करने वाले व्यक्ति को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। मानसिक शुद्धता हो तो पूर्वकृत पापों से भी तीर्थों में मुक्ति मिलती है।

पद्मपुराण में छह तीर्थों का उल्लेख है।

1) भक्त तीर्थ : भगवान के भक्त स्वयं तीर्थ रूप होते हैं। क्योंकि उनके हृदय में भगवान विराजते हैं। इसलिए भक्त-दर्शन को अवश्य जाएं।

2) गुरु तीर्थ : गुरु सदैव शिष्य के हृदय को ज्ञान के आलोक से प्रकाशमान किए रखते हैं। शिष्य के अज्ञान का नाश कर देते हैं। शिष्यों के लिए गुरु से बढ़कर कोई तीर्थ नहीं होता।

3) माता तीर्थ : मां से पुत्र की उत्पति एवं पोषण होता है। वह सदैव पूजनीय तीर्थ है।

4) पिता तीर्थ : जिसने माता-पिता का पूजन नहीं किया, आदर नहीं किया, उसके समस्त धार्मिक कृत्य निष्प्रयोजनीय हैं। माता-पिता की सेवा शुभ फलदायी होती है।

5) पति तीर्थ : पदम पुराण में कहा गया है कि जो स्त्री अपने पति के दाहिने चरण को प्रयागराज और बाएं चरण को तीर्थराज पुष्कर समझकर सेवा करती है, उसे उपरोक्त तीर्थों का पुण्य घर बैठे प्राप्त हो जाता है। पत्नी के लिए पति सर्व तीर्थमय हैं।

6) पत्नी तीर्थ : उत्तम आचरण वाली तथा सदाचार का पालन करने वाली भार्या तीर्थ के समान हो जाती है। जिस घर में सत्य परायण, पवित्र हृदया स्त्री का वास है-वह घर तीर्थ से कम नहीं होता।

धनावंशी वैष्णवों के लिए पंथ गुरु श्री धनाजी महाराज से अधिक आदरणीय संज्ञा नहीं है। उन्हें अपनी श्रद्धा और कृतज्ञता प्रकट करने के लिए धनाजी महाराज के स्थल धुआंकलां की यात्रा भाव भक्ति के साथ करनी चाहिए। इसके बाद सभी महंत द्वारों में भी पूर्व संतों तथा वर्तमान महंतों को चरण धोक करने के लिए जाना चाहिए। तीर्थ सेवन का परम फल भगवद् प्राप्ति है। जहां भी, जिस तीर्थ में जाना होता है, वहां जाकर अगर हमारा भगवद् प्रेम बढ़ता है तो तीर्थों में जाना शुभ है, तीर्थों में सात्विक भाव से योग्य पात्र को दान करना चाहिए। ब्राह्मण भोजन और पितृ तृपण तो अवश्य करना चाहिए। मौज-शौक या पिकनिक मनाने के लिए तीर्थों में कभी नहीं जाना चाहिए। तीर्थों के दौरान पति-पत्नी को सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है तथा भावों में शुद्धता रहनी चाहिए।

जीवन में सुखी होने का एक ही मंत्र है, उनसे जुड़े रहिये जिनकी पसंद आप हो।

प्रमुख भारतीय दर्शनों को समझें

भारतीय दर्शनका विकास विक्रम सम्वत्के लगभग पंद्रह शताब्दि तक बड़े जोरोंके साथ हुआ था, जिसको मध्यकाल कहते हैं।

भारतीय दर्शन के मुख्यत: दो भेद है-(1) नास्तिक (2) आस्तिक। वेदके सिद्धान्तको माननवालेको आस्तिक कहा जाता है। नास्तिक दर्शनके मुख्यत: तीन भेद बताये जाते हैं।

1. चार्वाक , 2. जैन, 3. बौद्ध

चार्वाकदर्शन

इस दर्शन के रचयिता आचार्य बृहस्पति है। इसका सिद्धान्त भौतिक जीवनको सुखमय बनाना हैं।

यावज्जीवेत्सुखं जीवेत ऋणम्कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत:।।

ये इस सिद्धान्तके परिचायक शब्द हैं। इस दर्शनमें प्रत्यक्ष को प्रमाणमात्र माना जाता है। चार्वाक के मतानुसार पृथ्वी, जल, तेज, वायुके सम्मिश्रणसे शरीर बनता है तथा मरण ही मोक्ष है। स्वभाव से ही जगत् उत्पन्न तथा नष्ट होता है, कोई ईश्वर नहीं है, लोकानुसार चलनेसे इसको लोकायतिक भी कहा जाता है।

जैनदर्शन

जैन विद्वानोंके मतानुसार आद्यधर्मप्रचारक आचार्य ऋषभदेव है। ये लोग चौबीस तीर्थकर मानते हैं। जैनदर्शन में मोक्षके तीन साधन माने गये है। 1. सम्यकदर्शन, 2. सम्यग्ज्ञान (जीव, अजीव, अस्रव, अन्ध, सम्बर, निर्जरा, मोक्ष-इन सात पदार्थों का ज्ञान), 3. सम्यक चरित्र। चरित्रसिद्धिके लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह-इन पाँचों व्रतोंका पालन करना नितान्त आवश्यक समझते हैं। पुन: पांच अस्तिकाय जैनदर्शनमें माने गये हैं। जीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय। स्याद्वाद् सप्तभंगीन्याय जैनदर्शनमें प्रसिद्ध है। ये आत्माको मानते है।

बौद्धदर्शन

भगवान बुद्धद्वारा प्रतिष्ठित धर्म बौद्धधर्म है। इस दर्शनके अनुयायियोंका मूल ग्रंथ त्रिपिटक है।

तस्वीर के रंग चाहे जो भी हो, किन्तु मुस्कान का रंग हमेशा खूबसूरत ही होता है।

इस ग्रंथके प्रधान चार सम्प्रदाय है-1. वैभाषिक, 2. सौत्रान्तिक 3.योगाचार और 4. माध्यमिक। इस विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है-

मुख्यो माध्यमिको विवर्तमखिलं शून्यस्य मेने जगत्
योगाचारमते तु सन्ति मतयस्तखां विवर्तोऽखिलः।
अर्थोऽस्ति क्षणिकस्त्वसावनुमितो बुद्ध्येति
सौत्रान्तिकः
प्रत्यक्षं क्षणभंङ्गुरं च सकलं वैभाविको भाषते।।

वैभाषिकके मतानुसार-प्रत्यक्षद्वारा अंदर अथवा बाहर जगत्के सम्बन्ध रखनेवाले समस्त पदार्थोंको सत्य माना जाता है। इसका दूसरा नाम स्वास्तिवाद भी है। सौत्रान्तिकके मतानुसार-बाहरी पदार्थ अनुमानद्वारा सत्य माना गया है। इसको विज्ञानवाद भी कहते है। माध्यमिकके मतानुसार जगत्में सभी पदार्थ शून्यरूप हैं।

आस्तिकदर्शन

आस्तिकदर्शन के मुख्य छः भेद हैं-1. न्याय, 2. वैशेषिक, 3. सांख्य, 4. योग, 5. मीमांसा और 6. वेदान्त

न्यायदर्शन

न्यायसूत्रके रचयिता गौतम महर्षि हैं। यह दर्शन दो धाराओंमें विभक्त है-पदार्थ मीमांसात्मक, प्रमाण-मीमांसात्मक। पदार्थमीमांसामें प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन आदि षोडश पदार्थोंका विवेचन है जो कि प्राचीन न्याय के नामसे प्रसिद्ध है। प्रमाण-मीमांसामें प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द-इन प्रमाणोंका सूक्ष्म विवेचन है, जिसको कि नव्य न्याय कहा जाता है। न्यायदर्शनका मत है-प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन आदि षोडश पदार्थोंके यथार्थ ज्ञानद्वारा मानव-जीवनका लक्ष्य प्राप्त होता है। ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती। इस दर्शनके मतानुसार परमाणु, आत्मा, ईश्वर इत्यादि नित्य पदार्थद्वारा जगत्की सत्ता है। इन्द्रियद्वारा लक्षित जगत् वस्तुतः सत्य है। परमाणु, समवायीकरण, ईश्वर निमित्तकारण तथा अनुमानगम्य है। ईश्वरके इच्छानुसार एक परमाणु दूसरे परमाणुसे मिलकर द्व्यणुक तथा द्व्यणुकके सम्मिश्रण से त्रसरेणु एवंरूपेण पञ्चमहाभूतकी समुत्पति होती है। मिथ्याज्ञानसे ही पुनर्जन्मादि दुःख होता है। अतः आत्माका साक्षात्कार अत्यन्त आवश्यक है।

वैशेषिकदर्शन

इस दर्शनके मूलसूत्रके प्रणेता कणाद है। वैशेषिकोंका मुख्य तात्पर्य बाह्य जगत्की विस्तृत समीक्षा है। वैशेषिकदर्शनमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष समवाय और अभाव-ये सात पदार्थ माने गये हैं। इस दर्शनके मतानुसार जबतक आत्मासे भिन्न पदार्थ का ज्ञान नहीं होता, तबतक आत्माको यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। आत्मा तथा आत्मासे भिन्न पदार्थका साधर्म्य-वैधर्म्य जाननेपर ही तत्त्वज्ञान

अनुभव का निर्माण नहीं हो सकता, इसे समय देकर ही पाया जा सकता है।

उत्पन्न होता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन-ये नौ द्रव्य हैं। वैशेषिक दर्शनमें तत्त्वज्ञानकी उत्पति करानेसे तथा मोक्षका कारण होनेसे निष्काम कर्मका सम्पादन भी अतीव आवश्यक माना गया है।

सांख्यदर्शन

सांख्यदर्शनके प्रतिपादक कपिल मुनि हैं। यह दर्शन द्वैतमूल का प्रतिपादक है। प्रकृति-पुरुष दो मूल तत्त्व हैं। प्रकृति जब चेतन पुरुषसे मिलती है, तब जगत्की उत्पति होती है। प्रकृति जड़ और एक है। पुरुष चेतन और अनेक हैं। सांख्य सत्कार्यवादका समर्थक है। सत्त्व, रज, तम-इन तीनों गुणोंकी समान अवस्था को ही प्रकृति कहा गया है। किन्हीं तीन गुणोंमें वैषम्य होनेपर ही सृष्टि उदय होता है। कुल पचीस तत्त्व पृथक-पृथक सांख्यदर्शनमें प्रसिद्ध हैं। पुरुष, प्रकृति, महतत्त्व (बुद्धि), अहंकार, मन पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय, पञ्च-तन्मात्राएँ और पञ्च-महाभूत इत्यादि। सांख्यका दार्शनिक दृष्टिकोण यथार्थवादकी ओर है।

योगदर्शन

योगदर्शनके प्रधानाचार्य पतञ्जलि मुनि है। योगदर्शनमें नाना प्रकारकी सिद्धियोंका विस्तारसे वर्णन है। योगके आठ अङ्ग हैं-यम, नियम, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। इन आठ अङ्गोके अभ्याससे चित्तवृत्ति निरुद्ध हो जाती है। वह पहले एकाग्र होती है। जहाँ चित्त ध्येय वस्तुके आकारको ग्रहण करता है, वहीं समाधिका समुदय होता है।

सांख्यदर्शनमें माने गये 25 तत्त्व योगशास्त्रमें भी माने गये हैं। योगदर्शनमें एक अधिक ईश्वर माना गया है। अतएव इसको सेश्वर सांख्य भी कहते हैं। योगमें क्लेश, कर्म, विषाक (कर्मफल), आशय (कर्मफल-अनुरूप संस्कार) इनके सम्पर्कसे रहित पुरुषविशेषको ईश्वर माना है। ईश्वर सदैव मुक्त है। ऐश्वर्य और ज्ञानकी पराकाष्ठा ही ईश्वर है।

मीमांसादर्शन

मीमांसादर्शन प्रमुख आचार्य जैमिनि है। इस दर्शनका प्रधान उद्देश्य वैदिक कर्मकाण्ड विधानमें दीख पड़नेवाले विरोधका परिहार करके एकवाक्यता उत्पन्न करना है। मीमांसाका विषय धर्मविवेचन है। धर्माख्यं विषयं वस्तु मीमांसाया: प्रयोजनम्। वेद द्वारा कथित इष्ट-साधन धर्म है और अनिष्टसाधन अधर्म है। वेद स्वयं नित्यसिद्ध तथा अपौरुषेय है। कर्म ही सर्वप्रधान वस्तु हैं। कर्म के द्वारा अपूर्व और अपूर्वके द्वारा फल प्राप्त होता है, परंतु अपूर्वके द्वारा समुत्पन्न फल (स्वर्गादि) कालान्तर ही प्राप्त हो सकता है। यह उनका कहना है।

इच्छाओं का भी अपना चरित्र होता है स्वयं के मन की हो तो बहुत अच्छी लगती है दूसरों के मन की हो तो बहुत खटकती है।

वेदान्त

वेदान्तसूत्रके निर्माता वादरायण है। आचार्य बादरायणप्रणीत इस वेदान्तसिद्धान्तके अनुसार ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर: अर्थात् ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या है; जीव ही ब्रह्म हैं और ब्रह्मके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। शंकराचार्य ने अद्वैतमतकी पूर्ण पुष्टि की है। यह जगत् मायाद्वारा रचित है, अतएव वह सब अनिर्वचनीय है अथवा यह ऐसा है- इस तरहका निश्चय नहीं हो सकता। मिथ्या कहनेसे वन्ध्या स्त्रीका पुत्र-जैसा नहीं, अपितु परमार्थ-तत्त्वज्ञान होनेपर जगत्को जगत् न देखकर साधकको सर्वत्र ब्रह्मस्वरूपकी ही उपलब्धि होती है।

बह्म के दो गुण अर्थात् दो स्वरूप हैं-एक सगुण, दूसरा निर्गुण। मायाविशिष्ट ब्रह्म सगुण माना जाता है और इसीको ईश्वर भी कहा है। सगुण ब्रह्म जगत्का कर्ता-धर्ता है। निर्गुण मायारहित, सत्यरूप, अखण्ड, व्यापक, सच्चिदानन्दस्वरुप है, यह अद्वैतदर्शनमें माना गया है। वेदान्तमें तीन सत्ता मानी गयी है-पारमार्थिक, प्रातिभासिक, व्यावहारिक। इस दर्शनके अनुयायी लोग ब्रह्मसूत्र, गीता, उपनिषदको प्रस्थानत्रयी कहते हैं। इसमें ज्ञानकी प्राप्ति ही मोक्ष है। ब्रह्मका स्वरूप साक्षात्कार अनुभवद्वारा होता है। जिसको जाननेकी इच्छा है, उसके लिए स्वयं अनुभव करना अत्यन्त आवश्यक है। अत: ब्रह्मजिज्ञासुओंको तदनुसार अनुष्ठान-साधनादि करना नितान्त आवश्यक है। वेदान्तदर्शनमें यह स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है। वेदान्तमें श्रुति (वेद) ही प्रमाण है। तर्क भी वही मान्य है वेदानुकूल हो।

❊❊❊

थांरी महिमा अपरंपार धन धन धना जी।
आया धनावंसी थांरै द्वार धन धन धना जी।
म्हांरो बेड़ो लगाओ पार धन धन धना जी।
थे भक्ति रा दातार धन धन धनाजी ।

अन्तरा

1 पिता रामेश्वर माता गंगा। जिण घर नित होवत सतसंगा। धुवांकला थारो धाम सुरंगा।
थांरो गोत है हरछतवाळ ।।धन धन धना जी ।
2 संता आय एक मूरति दीन्ही। ठाकुर मान शीश धर लीन्ही। निश्चय धार कर पूजा कीन्ही।
थे तो रीझा लिया करता। ।।धन धन धन्ना जी ।
3 आप प्रभु को भोजन जिमाया। गाय चरावण गिरधर आया। खेत रूखाळ्यो डेरा लगाया।
ना जाण सक्या नर ना। ।।धन धन धना जी ।
4 संत जमात मिली एक भूखी। पेट गुजारी मांगी लूखी सूखी। सुणकर बात ध्यान में ढूकी।
कियो बीज तणों सतका। ।।धन धन धना जी ।
5 बीज बिना ही ब्हायो हळियो ।ऊग्यो धान काढ दियो कळियो। खूब भलेरो लाग्यो खळियो।
प्रभु किरपा रो चमत्कार ।।धन धन धना जी ।
6 अपणैं समाज का कर कर चेला। ठाकुर पूजा कर दिया भेळा। धर्म सनातन मारया हेला।
होयो धनावंश को अवता। ।।धन धन धना जी ।
7 मोती तलाव नाम का सरव। आज बण्यो बो मोती साग।
ना भटको धनावंशी दर द। सुणै गरीब दास की पुका। ।।धन धन धन्ना जी ।

रिश्तों को जोड़े रखने के लिए कभी अंधा, कभी बहरा तो कभी गूंगा होना पड़ता है।

सद्गुणोंका सदैव अभ्यास करते रहना चाहिए। इसके विपरीत निर्दयता चिरस्थायी बीमारी होती है और कठिन दु:ख मिलते हैं। यदि निर्दयता जान-बूझकर की जाये तो पागलपन भी हो सकता हैं।

आलेख

कर्मतत्त्व

प्रकृति में कारण और कार्यका नियम सब लोकों में व्याप्त है। प्रत्येक कारण का परिणाम कोई-न-कोई अवश्य होगा। विज्ञान का नियम है कि क्रिया और उसकी प्रतिक्रिया समान किंतु विपरीत दिशा की होती है। यह नियम सब लोकोंमे एकसा है। हमारे प्रत्येक कार्य में स्थूल कार्य के अतिरिक्त भाव तथा विचार की भी क्रिया होती है। प्रथम हम किसी कार्य के सम्बन्ध में सोचते हैं, तब वह विचार सोची वस्तु पर पहुँचकर वहाँ क्रिया करता है। उस विचार के आते ही हमारे मनमें भावना तथा देह में वैसा भाव -क्रोध, लोभ, स्नेहादि वैभाव उत्पन्न होत हैं और बाहर निकलकर दूसरों पर वैसा प्रभाव डालते हैं। इतनी क्रिया सूक्ष्म रूप से हो चुकने पर स्थूल कर्म अपना कार्य स्थूल जगत् में करता है। इस प्रकार प्रत्येक कार्य का विपाक स्थूल-देहमें, वासना-देह में तथा मनोमय कोश में इन पर होगा। यदि भली प्रकार उछलनेवाली रबर की गेंद हम जोर से सीधे धरती पर मारें तो वह उतने ही वेग से उछलकर हमारे हाथ में उतनी ही शक्ति से लगेगी। यह साधारण क्रिया का स्थूल फल हुआ। इसके साथ-साथ भाव और विचार का फल भी होता हैं। मान लें कि दो व्यक्तियोंने दो उद्यान जनता हितार्थ म्युनिसिपलबोर्ड (नगर-प्रबन्ध-समिति) को भेंट कर दिये। उनमें से एक के मनमें केवल परोपकार भाव था और दूसरे के मनमें यह बात थी कि इस सेवा के कारण सरकार से मुझे अधिक पुरस्कार या उपाधि मिलेगी, पर दोनों के भाव और विचार भिन्न होने से उनके भावों तथा विचारों का विपाक दोनों के फलों में भेद कर देगा। जिसकी नीयत स्वार्थपूर्ण है, उसे उस दाय से चित्त में आनन्द, शान्ति और चारित्रिक, उन्नति प्राप्त नहीं होगी, पर दूसरे को अवश्य प्राप्त होगी। कर्म के तीन भेद होते हैं-प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण। हमारे समस्त

संघर्ष की राह पर जो चलता है वही संसार को बदलता है,
जिसने रातों से जंग जीती है, सूर्य बनकर वही निकलता है।

पूर्व कर्म संचित हैं। उसमें जितना भाग कर्मदेवता इस जन्म में हमसे भुगतवाना चाहते हैं, वह प्रारब्ध बन जाता है। उसे हमें अवश्य भोगना पड़ता है। बाकी का संचित आगे जाकर क्रमश: प्रारब्ध बनेगा। क्रियमाण वह है, जिसे हम अभी कर रहे हैं। एक ही कर्म भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में किये जाने पर पृथक्-पृथक् फल उत्पन करता है।

कर्म का साधारण फल इस प्रकार होता है-जैसे सेवा के कार्यों का सुख और अच्छी परिस्थिति या पीड़ा, ऊँची-नीची इच्छाओं से वैसी योग्यता या सामर्थ्य की प्राप्ति, दीर्घकालीन विचारों से वैसा स्वभाव बनना, अनुभव से ज्ञान होना, दु:खपूर्ण अनुभवों से पाप-विवेचिनी बुद्धि की वृद्धि, नि:स्वार्थ सेवा की इच्छा से आध्यात्मिकता की प्राप्ति आदि।

ऊँचे लोकों (अन्तर्जगत्) में भलेबुरे कर्मों का फल बहुत बड़ा होता है। भलोक (स्थूल जगत्) में कर्म की जो शक्ति है, उसी कर्म की वासना (इच्छा) की शक्ति भुवर्लोक (वासनादेह) में उससे पाँचगुनी और मनोमय कोषमें-विचारकी शक्ति पच्चीसगुनी। इस प्रकार बहुत अधिक काम करती है। उच्च विचार कारण-देह में इससे भी पाँचगुना अर्थात् 125 गुना काम (प्रभाव) करता है। यदि हमारे कर्म से किसी दूसरे के जीवन में विशेष बाधा पड़ती है, तो वह हमारे पास स्वत: कर्म-ऋण लेने को आकर्षित होगा। स्वार्थपरायणता से मनुष्य का विकास रुक जाता है। नि:स्वार्थ प्रेम और वैसी ही सेवा करने से हमारी उन्नति बहुत शीघ्र होती है। इसीलिये हमें जीवन में इन दोनों सद्गुणोंका सदैव अभ्यास करते रहना चाहिए। इसके विपरीत निर्दयता चिरस्थायी बीमारी होती है और कठिन दु:ख मिलते है। यदि निर्दयता जान-बूझकर की जाय तो पागलपन भी हो सकता है। ईश्वर को कर्माध्यक्ष कहा गया है। प्राकृतिक सब बल उसीसे निकलते है। यह कर्म-नियम भी उसीसे निकला है। जब हम सुख-दु:ख को समान भाव से ग्रहण करके केवल जगत्-कल्याण के लिये श्रीकृष्णार्पण-भाव से कर्म करेंगे तो कर्म-विपाकके नियम से मुक्त हो जायेंगे। भगवान ने बताया है कि अध्यात्म-मार्ग का थोड़ा-सा भी आचरण महाभयसे बचा देता है (गीता 2। 40)। साधारण अज्ञानी मनुष्य पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, भलाई-बुराई को अच्छी प्रकार नहीं समझते। उनके कर्म मिश्रित रहते है। पर अध्यात्मविद्या के अनुयायी इन बातों को भली प्रकार समझ-बूझकर कर्म करते है।

हमारे चरित्र में जो बुराई हो, उसे हमें अभी से समझकर त्यागना चाहिये। उसे जीत लेना चाहिये। नहीं तो हमारे दुर्गुण अनेक जन्मों तक बने रहेंगे। महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में कहा है-वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् (2।33)। अर्थात् दुर्गुणों को मिटाने के लिये उनके विपरीत गुणों का मनन और अनुशीलन करना चाहिये। यदि हम में हिंसात्मक भाव है तो अहिंसा की लगन और अभ्यास करना चाहिये। इसी तरह असत्यकी आदत मिटाने के लिये सत्य का अभ्यास, चोरीका स्वभाव दूर करने लिये अस्तेयका मनन और अभ्यास करना चाहिये। ऐसे ही विपरित सद्गुणों के आश्रय से दुर्गुणों को दूर करना चाहिये।

●●●

मानसिक दुर्बलता

एक बार एक राजा ने अपनी प्रजा की सच्चाई जानने के लिए व प्रजा को मानसिक दुर्बलता से अवगत कराने के लिए एक मन्दिर बनवाया। उस मन्दिर में मूर्ति स्थापित करने से पहले एक अच्छे संत से मिलकर उनके द्वारा एक नकली घोषणा करवा दी कि कल सुबह से लेकर शाम तक मन्दिर में भगवान प्रकट होंगे। सभी से निवेदन है कि कोई दर्शन से वंचित मत रहना। इस बात से हम पहले ही अवगत करा देते हैं कि असली बाप का होगा उसे तो भगवान चार भुजाधारी ही दर्शायेंगे पर कोई दूसरे बाप का होगा उसको गधा ही दिखेगा, इसलिए हमें कोई दोष मत देना। साधु बाबा की बात का सबको विश्वास हो गया कि जरूर भगवान के दर्शन होंगे। राजा की योजना के अनुसार रात को चुपके से लाकर मन्दिर में गधा रोक दिया गया। सुबह दर्शन का तांता लग गया। मन्दिर के किवाड़ बन्द थे,एक छोटे छेद से दर्शन कराये जा रहे थे,सभी को गधा दिख रहा था, पर सभी ने चार भुजाधारी विष्णु दर्शन ही बताया। सभी के मनमें समस्या थी कि गधा बतायेंगे तो हमें लोग नकली बाप का मानेंगे। एक दो आदमी कोई सच बोलने वाले निकल गये जिसके कारण सब लोग उनसे लड़ाई करने व उनको लताड़ने लग गए, तब राजा ने आकर उन सबको सच्चाई से अवगत कराया। धनावंश को भी सच्चाई दिखाने की आवश्यकता है।

● **सीताराम दास परिव्राजक**

जीवन में तकलीफ ना आए, असंभव है, लेकिन इसमें भी मुस्कराए ये तो संभव है।

रामानन्द
और अन्य मध्यकालीन संत

जहाँ भगवान की विशुद्ध भक्ति का ही प्रश्रय सामने हो वहाँ भला इन भेदभाव के नियमों का क्या काम?

लगभग छ सौ वर्ष हुए, काशी के रामानुजीय श्रीसंप्रदाय का सदस्य एक युवा सन्यासी दीर्घ काल तक देश का भ्रमण करने के बाद जब पुन: एक दिन अपने धाम को वापस लौटा तो उसे एक विचित्र परिस्थिति का सामना करना पड़ा। उसने देखा कि उसका संप्रदाय उसके प्रति अपने द्वार बंद किए बैठा है–यदि कोई मार्ग प्रवेश के लिए खुला रखा गया है तो वह है प्रायश्चित का कटु मार्ग ही। सरल हृदय युवक समझ न सका, आखिर किस अपराध के लिए उसे यह दण्ड दिया गया था–वह समझ नही पाया कि यदि प्रायश्चित भी वह करता तो किस बात का। यदि यही उसका एकमात्र अपराध था कि देश की चारों सीमाओ को नाप कर लोक के निकट संस्पर्श में आने तथा जाति–पाँति के भेदभाव की अवहेलना कर सबको समान भाव से हरि–भक्ति संदेश सुनाने के लिए वह अग्रसर हुआ था। तब तो उसके पूर्वगामी रामानुज आदि उससे कहीं अधिक दण्ड के पात्र थे। जिनकी सारी आयु ही इसी तरह के प्रयास में बीती थी। वह झुँझला उठा अपने सहयोगियों की नासमझी पर और अन्याय के रंग में रंगी हुई उनकी मनमानी पर उसे क्रोध भी आया। उसके अंतस्तल में क्रांति की लौ तो भीतर ही भीतर पहले ही सुलग रही थी। अब मानो लपट का रूप ले एक बारगी ही वह बाहर भी भभक उठी। वह पुरातन वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा का विरोधी

मौन किसी मानव की कमजोरी नहीं, उसका बड़प्पन होता है।
वरना जिसको सहना आता है, उसका कहना भी आता है।

न था। न समाज के हाथों से अनुशासन का अधिकार ही छीन लेना वह चाहता था। किन्तु वह पूछता था कि आखिर उपासना के क्षेत्र मे भी ये बंधन और विधान क्यों? जहाँ भगवान् की विशुद्ध भक्ति का ही प्रश्रय सामने हो वहाँ भला इन भेदभाव के नियमों का क्या काम? उस परम पिता हरि के आँगन मे तो क्या छोटे और क्या बड़े, क्या ब्राह्मण और क्या शुद्र, क्या गृहस्थ और क्या संन्यासी, सभी का समान अधिकार, समान धर्म और समान ही विधान होना चाहिए। फिर इस हास्यास्पद सांसारिक वर्ग–भेद को वहाँ लागू करने का क्या अर्थ? उसने प्रायश्चित का दण्ड अंगीकार करने से साफ इन्कार कर दिया। उन दिनों श्रीसंप्रदाय के आचार्य राघवानन्द नामक एक महापुरूष थे, जिन्होने रामानुज के बाद वैष्णव भक्ति–मार्ग का देश में प्रचार करने में विशेष रूप से भाग लिया था। पिछले दिनों वह दक्षिण भारत से उठकर उत्तर मे काशीधाम में आ बसे थे और उन्होनें ही स्वंय अपने हाथों से इस युवा संन्यासी को दीक्षा दे श्रीसंप्रदाय में सम्मिलित किया था। वह उसकी प्रतिभा से बहुत प्रभावित थे और चाहते थे कि उनके बाद संप्रदाय की गद्दी पर यही युवक प्रतिष्ठित हो। वस्तुत: इससे अधिक योग्य और तेजस्वी व्यक्ति उन्हें सारे संप्रदाय में दूसरा न दिखाई पड़ता था। जब उन्होंने अपने इस प्रतिभाशाली शिष्य को हाथ से निकल जाते देखा तो वह बड़े चिंतित हुए। अपने भरसक प्रयास से उन्होंने उसे समझाने का प्रयत्न किया। किन्तु वह अपनी टेक से टस से मस न हुआ। वस्तुत: इतने बड़े संप्रदाय के आचार्यपद का प्रलोभन तो क्या, सारी दुनिया का वैभव भी उसे अपनी स्वाधीन चिन्ता के मार्ग से विचलित नहीं कर सकता था। वह चल दिया तुरन्त सब–कुछ छोड़ कर, और एक कमण्डलु ले एकाकी ही गंगा–तट पर उसने अपना आसन जा लगाया। तब कट्टरपंथियों की उस राजधानी काशी ही के पंचगंगा–घाट की एक सामान्य सी कुटिया से निम्न युगान्तरकारी घोषणा के स्वर एक दिन उस विद्रोही संन्यासी के मुख से उद्घोषित होते सुनाई दिए और उसके इस महामंत्र को अपना नारा बनाकर देश का सारा कुचला हुआ जनप्रवाह इस प्रकार उसके पीछे हो लिया। मानों उसके रूप में लोक को एक चिरप्रतीक्षित नेता मिल गया हो।

जाति-पाँति पूछै नहि कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।।

बात कहने–सुनने मे यों बहुत सीधी–सादी लगती थी, किंतु जब उसके आघोष का भैरव रव लोक के अंतस्तल में पहुँचकर गंभीर नाद के साथ प्रतिध्वनित हुआ तो एक ऐसे विराट जनान्दोलन का प्रबल ज्वार इस देश में उमड़ता दिखाई दिया जिसकी समता की सांस्कृतिक हलचल इससे पहले हमें अपने इतिहास में केवल दो या तीन बार ही और देखने को मिल सकी थी। सबसे उल्लेखनीय बात तो यह थी कि इस आन्दोलन की धुरी समाज के निरंतर कुचले हुए स्तरों पर ही प्रस्थापित थी–उन्हीं से इसे विशेष बल मिला था। वस्तुत: उपरोक्त घोषणा के बहुत पहले ही से समाज की तह में असंतोष की एक लहर जन्म पा चुकी थी। उस लहर मे प्रत्यक्ष जीवन से दूर हटते जा रहे तत्कालीन धर्म और पाण्डित्य के प्रति उबी हुई जनता की प्रतिक्रिया तो काम कर ही रही थी, साथ ही एक युगव्यापी अतृप्त धर्म–पिपासा, वर्णभेद द्वारा जर्जरीभूत समाज–व्यवस्था के प्रति दिन पर दिन जोर पकड़ते जा रहे विद्रोह और इन सबसे कहीं अधिक उल्लेखनीय नवागत इस्लाम की राजनीतिक विजय के कारण हतप्रभ राष्ट्र के अंत:स्थल में उत्पन्न हुई एक देशव्यापी निराश वेदना की भावना भी अंतर्हित थी। इस प्रतिक्रिया को और भी बल मिला, जब एक ओर सहजयानी सिद्धों और नाथपंथी योगियों जैसे अक्खड़ो की अटपटी वाणी के स्वर सुनाई पड़ने लगे, तथा दूसरी ओर इस्लाम के

अपने किरदार की हिफाजत अपनी जान से बढ़कर कीजिए,
क्योंकि इसे जिंदगी के बाद भी याद किया जाता है।

श्री रामानन्द का जन्मस्थान भी उत्तरी भारत में ही बताया जाता है। कहते है, वह प्रयाग के एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। उनके बचपन का नाम रामदत था।

सूफी मतवादियों के मस्ताने तराने भी जनहृदय का ध्यान बरबस अपनी ओर खींचने लगे। इस प्रकार भीतर ही भीतर एक नए वातावरण के सर्जन की तैयारी तो पहले ही से हो चुकी थी–केवल प्रतीक्षा थी उपयुक्त समय पर नेतृत्व की बागडोर सँभाल लेनेवाले एक योग्य और प्रभावशाली व्यक्तित्व की। अब उनके सामने इस युवा संन्यासी के रूप में आ उपस्थित हुआ था–अपने मनोनीत लोकनायक के सभी लक्षण उन्हें उसके जादूभरे व्यक्तित्व में अभिव्यक्त होते दिखाई दिए। बस फिर क्या पूछना था। देखते ही देखते सारा उत्तरी भारत उसके साथ एक विशद धार्मिक क्रान्ति के पथ की ओर बढ़ चला। कबीर और नानक आए, रैदास और दादू की वाणी सुनाई पड़ी। सबकी एक ही यह आवाज थी कि मनुष्य की महत्ता का पैमाना, ऊँची कहलाने वाली जातियों में जन्म लेना नहीं, प्रत्युत ईश्वर के प्रति लगन या भक्ति ही है। इस आवाज की ठेस से युग–युग से सुषुप्त समाज के निम्नतर दलित स्तर भी सस्वर हो उठे। वे अपनी व्यथा भूल से गए और कालान्तर में उनके हृदयतल से ऐसे मार्मिक और उच्च तत्वसूचक ज्ञान–भक्तिमिश्रित स्वर फूट निकले कि बड़े–बड़े दार्शनिक तक चौंक पड़े। क्या आश्चर्य यदि सबने परोक्ष अथवा अपरोक्ष भाव से उस युगप्रवर्तक संन्यासी को ही अपना आचार्य माना, जिसने पहले–पहल उन्हें जगाकर इस महान आन्दोलन को वेग दिया था। यद्यपि एक विशिष्ट संप्रदाय के साथ उसका नाम संश्लिष्ट हो जाने के कारण आज उस महापुरूष की व्यापक महता हमारी आँखों से बहुत–कुछ ओझल हो गई है, किन्तु इस देश की विशद आत्मकथा के पृष्ठों पर उसकी जो अमर छाप अंकित है उसे कौन मिटा सकता है। जिस प्रकार मध्ययुग का पूर्वार्द्ध–काल उस युग की अन्यतम विभूति शंकर के नाम से शांकर युग कहकर अभिहित किया जा सकता है, उसी प्रकार उसका उतरार्द्ध इस दूसरे युगप्रवर्तक संन्यासी के नाम से रामानन्द–युग कहकर पुकारा जाना चाहिए। शंकर का युग आचार्यो का युग थ, जिन्होंने पुनरूज्जीवित भारतीय धर्म को एक सुदृढ़ दार्शनिक भित्ति प्रदान कर इस देश की चिन्तन–प्रवृति को फिर से जगा दिया था। रामानन्द का युग था संतों का युग, जो धर्म की मन्दाकिनी को ज्ञान और पाण्डित्य के दुर्गम हिमशिखर से भक्ति की हरी–भरी उपत्यका में ले आए और इस प्रकार जिन्होंने उसे लोकहितकारी गंगा की भाँति एक मंगलमयी स्त्रोतस्विनी मे परिणत कर दिया। इस संत परम्परा के युगल मुकुट–मणि के रूप में प्रकट हुए कबीर और तुलसीदास, जो उस युग की दो प्रमुख धाराओं–निर्गुण और सगुण उपासना के सब से महान् प्रतिपादक थे। यह एक उल्लेखनीय बात है कि इन दोनों ने अपने को रामानन्द के पदचिन्हों का

सुख हो लेकिन शांति ना हो तो समझ लीजिए हम सुविधाओं को समझ रहे है।

ही अनुगामी माना। इस प्रकार मध्ययुग के उतरकाल की समग्र भारतीय चिन्ता के प्रेरक एक दृष्टि से रामानन्द ही थे। प्रसिद्ध ही है कि भक्ति उपजी तो दक्षिण के द्रविड़ देश में, किन्तु वह पुष्पित और पल्लवित हुई उत्तर में आकर–उसे विन्ध्यमेखला के इस पार ले आकर गंगा–यमुना के उपजाऊ मैदानों में रोपने का श्रेय रामानन्द को ही है।

यह भी एक उल्लेखनीय बात है कि जहाँ शंकर आदि आचार्य मुख्यत दक्षिण की ही उपज थे, वहाँ इस युग के अधिकतर संत उतर भारत में ही पैदा हुए। कबीर ने काशी में जन्म लिया था, नानक ने पंजाब में। रैदास, दादू, पलटू, मलूक आदि भी नर्मदा के इस पार की ही उपज थे। श्री रामानन्द का जन्मस्थान भी उतरी भारत ही में बताया जाता है। कहते हैं, वह प्रयाग के एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। उनका बचपन का नाम रामदत्त था। बारह वर्ष की आयु में वह शिक्षा के लिए काशी पहुँचे और वहाँ एक अद्वैत–वादी संभ्रान्त शिक्षक के पास टिककर दर्शन का अध्ययन करने लगे। इन्हीं दिनों उनकी भेंट श्रीसंप्रदाय के आचार्य राघवानंद से हो गई, जिन्होंने वैष्णव मत में दीक्षित कर उन्हें अपना अनुयायी बना लिया। तभी से इनका नाम रामानन्द प्रख्यात हुआ। बहुत दिन तक गुरू की सेवा में रहकर रामानन्द एक बहुत लंबी भारत–यात्रा पर निकल पड़े। उससे वापस लौटने पर प्रायश्चित के प्रश्न पर गुरू से उनका मतभेद और विवाद उठ खड़ा हुआ, उसकी झलक पूर्वपंक्तियों में आपको मिल ही चुकी है। रामानन्द ने श्रीसंप्रदाय से पृथक होकर अपना एक स्वतंत्र संप्रदाय स्थापित किया, जिसका नाम रामावत–संप्रदाय पड़ गया। किन्तु उनका महत्व एक पृथक संप्रदाय के प्रवर्तक के रूप में उतना नहीं हैं जितना उस क्रान्ति के कारण है जो उन्होंने तत्कालीन भारतीय धर्म के क्षेत्र में प्रस्तुत कर दी थी। इस क्रान्ति का सूत्र था उपासना के क्षेत्र में सामाजिक समानता की भावना का सनिवेश। रामानंद की दार्शनिक भिति रामानुज के ही मत के अनुरूप थी, किन्तु उनकी नैतिक विचारधारा पूर्ववती आचार्यो से कहीं अधिक उदारता लिये हुए थी। वह भक्ति के क्षेत्र में जाति–पाँति के खान–पान–संबंधी बंधन को स्वीकार नहीं करते थे। दूसरे, इस क्षेत्र का द्वार वे शूद्र–ब्राह्मण सभी के लिए समान रूपसे खुला हुआ मानते थे। स्वयं रामानन्द के जो बारह प्रधान शिष्य प्रख्यात हैं, उनमें से कई तथाकथित नीची जातियों में ही उत्पन हुए थे। रैदास जाति के चमार थे, कबीर एक मुसलमान जुलाहे थे, सेना नाई जाति में पैदा हुए थे। रामानन्द स्वत: एक उच्च ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। वेदों और दर्शनों के वह प्रकाण्ड पण्डित थे। उनकी समाज में उच्च प्रतिष्ठा थी, और श्रीसंप्रदाय जैसी प्रभावशाली धार्मिक संस्था के वह आचार्य होने जा रहे थे। फिर भी उन्होनें मुख्यत: समाज के निम्नतम स्तरों को हृदय से लगाया। संस्कृत के अतिरिक्त जनसाधारण की बोली में भी साहित्य–रचना की और सबको रामनाम का मंत्रबीज दिया। ये सब बातें उनकी प्रबल सुधारवादी प्रवृति की ही सूचना हमें देती है।

रामानन्द ने श्रीसंप्रदाय कै वेकुण्ठवासी विष्णु या नारायण के बदले उन्हीं के लीलावतार राम की उपासना का मार्ग प्रस्तुत किया, जो जनसाधारण के लिए अधिक ग्राह्य हो सका। यह रामभक्ति–धारा तुलसी की काव्य गंगा का आवेग पाकर भारत के लिए एक तीर्थ बन गई।

रामानन्द भारतीय इतिहास के दो महायुगों की संधिरेखा पर स्थित हैं। उनके आविर्भाव के साथ ही पंडिताऊ युग का अंत और भक्ति–प्रधान युग का आरंभ होते दिखाई देता है। अब संस्कृत पीछे छूट चली और हिंदी आदि आधुनिक बोलियाँ ही सर्वप्रधान बन गई। यद्यपि रामानन्द के मतवाद सम्बन्धी प्रधान ग्रंथ जैसे ब्रह्मसूत्र पर आनन्द–भाष्य, श्रीमद्भगवद्गीताभाष्य, वेष्णवमतान्तरभास्कर, श्रीरामार्चनपद्धति आदि–

दूसरों की शर्तों पर राजा बनने से कई गुना बेहतर है अपनी ही मौज का फकीर बने रहना।

संस्कृत ही में विरचित हैं, किंतु उन्होनें हिंदी में भी अनेक पद रचे और इस प्रकार जनसाधारण की बोली में साहित्यर्जन की प्रवृति को बढ़ावा दिया। उनके कुछ पद सिक्खों के ग्रंथ साहब में भी संकलित मिलते हैं। रामानन्द के बारह प्रधान शिष्य थे रैदास (या रविदास) चमार, कबीर जुलाहा, धना जाट, सेना नाई, पीपा राजपूत, भावानन्द, सुखानन्द आशानन्द, सुरासुरानन्द, परमानन्द, महानन्द और श्रीआनन्द्। इनमें से कुछ यद्यपि स्वयं रामानन्द के हाथों दीक्षित न हुए थे, तथापि उनकी महानता से आकर्षित होकर ही उन्हें गुरू मानने लगे थे। रैदास आयु में कबीर से बड़े थे। कहा जाता है कि प्रेमयोगिनी मीरा ने रैदास ही से भक्तितत्व की दीक्षा ली थी। रैदास के लगभग 30 पद ग्रथ साहब में संगृहीत मिलते हैं। रामानन्द के शिष्यों में सबसे महान् निस्संदेह कबीर हुए। धना एक जाट किसान थे, सेना जाति के नाई थे और पीपा एक छोटे से ठिकाने के अधिपति थे। भावानन्द, सुखानन्द आदि रामानुजीय थे, किंतु बाद में रामानंद के समर्थक बन गए थे। इनके अतिरिक्त और भी अनेक संत इस युग में हुए, जो रामानन्द के शिष्य तो न थे तथापि वही आवाज उन्होनें भी उठाई, जिसका पहला आघोष रामानन्द ने किया था। वस्तुत: उतरकालीन मध्ययुग के भारत का ऐसा कोई प्रान्त न बच था, जहाँ कोई न कोई महान् संत प्रादुर्भूत न हुआ हो। गुजरात में इसी युग में महान कृष्णभक्त नरसी मेहता की वाणी गूँजी, जो आज भी उस प्रदेश के जनहृदय में भक्ति की लौ जगाये हुए हैं। महाराष्ट्र में क्रमश: ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और रामदास नामक रहस्यवादी संत पैदा हुए, जिनके प्रयास से पश्चिमी समुद्रतटवर्ती भारत का सारा भूभाग एक अभूत पूर्व ज्ञानभक्तिमूलक लहर से परिप्लावित हो गया। ज्ञानेश्वरकृत गीता की टीका ज्ञानेश्वरी भारतीय वाङ्मय का एक अमूल्य रत्न है। नामदेव-द्वारा रचित कुछ पद सिक्खों के ग्रंथ साहब में भी संकलित हैं। तुकाराम को हम महाराष्ट्र का तुलसीदास कह सकते है। उनके अभंग सारे महाराष्ट्र में उसी प्रकार गाये जाते हैं जैसे उतरी भारत में रामायण के पद या कबीर की साखियाँ। रामदास एक क्रांतदर्शी महापुरूष थे। उनके संबंध में शिवाजी वाले प्रकरण में आप विशेष परिचय पा सकेंगे। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, रामानन्द का युग भारतीय इतिहास का संत-युग था-उसमें हमारे देश की आध्यात्मिक प्रतिभा का आश्चर्यजनक प्रस्फुटन हुआ। रामानन्द और कबीर के ही पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए क्रमश: दादूयाल, सुन्दरदास, रज्जब, धरणीदास, चरणदास, भीखा, दरियासाहब, मलूकदास, पलटूदास, देधराज आदि कई उच्च कोटि के संत उत्तर भारत में हुए, जिनमें दादू (1544-1603 ई0) सबसे बढ़े-चढ़े थे। कबीर की भाँति वह भी समाज के निम्न स्तरों में से उठे थे- कहते हैं, वह जाति के एक धुनिया थे। उनकी उक्तियों पर कबीर का गहरा प्रभाव दृष्टिगत होता है। यद्यपि उनमें कबीर का मस्तमौलापन नहीं हैं तथापि रहस्यवाद के क्षेत्र में वह कहीं-कहीं कबीर से काफी ऊँचे उठ गए हैं। दादू, मलूकदास, पलटूदास, सुन्दरदास आदि के पद आज भी जनसाधारण को सरल शब्दों में भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का पाठ पढ़ाते हैं। इन मध्यकालीन सतों ने धर्म मंदाकिनी को लोक में प्रवाहित कर भक्ति भाव पैदा करने का प्रयास किया, उसके लिए वे सदैव वंदनीय रहेंगे।

●●●

दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं, एक वो जो मौका आने पर साथ छोड़ देते हैं और दूसरे वो जो साथ देने के लिये मौका ढूंढ लेते हैं।

आलेख

चेतन स्वामी

धनावंशी स्वामी समाज को महंत व्यवस्था के बारे में सोचना तो होगा

हरेक महंत के पास एक सुन्दर मंदिर भी है। यानि महंत होने के साथ-साथ वह मंदिर का पुजारी भी है। उसकी अतिरिक्त विशिष्टता यह है कि वह अपने पंथ की धार्मिक परम्पराओं का स्वयं निर्वहन करता है और समाज को भी उन परम्पराओं से अवगत कराता है। सम्पूर्ण दिन भगवद् भाव में आप्लावित तथा जीवनोद्धार के कामों में संलग्न रहता है।

अब कोई कहे कि-हमारे महंतों को तो हम ऐसा करते नहीं देखते हैं। तो इसका उत्तर क्या बने? महंत के संरक्षण, उसकी पेट भराई आदि की सारी जिम्मेदारी तत्सम्बन्धित पंथानुयायियों की होती है। वे महंत को जैसा चलाएं, उनसे जैसी अपेक्षाएं रखें, वे वैसा चलते हैं।

वस्तुत: महंत-समाज का आईना होते हैं। समाज की जैसी सामाजिक शक्ल होती है, वैसी महंतों में दिखती है। ईमानदारी से सोचें-एक भी धनावंशी व्यक्ति महंत के प्रति अपना किसी किस्म का दायित्व समझते हैं क्या? महंत कंठी धारण करवाते हैं। गुरु होते हैं। गुरु शिष्यों से परे जा सकते हैं क्या? हम उन्हें जब कोई काम पड़ता है तो रस्म निभाने के लिए बुलाते हैं और उन्हें उतनी सी देर के लिए गुरु मानते हैं, पैर पूजते हैं। कई कई धनावंशी परिवार ऐसे मिल जाएंगे, जिन्होंने अपने घरों में पिछली तीन पीढियों से महंत को बुलाया ही नहीं है। हम महंत से दूर-महंत हम से दूर। महंत ही तो थे जो आपको सुगरा बनाते थे। वरना तो आप निगुरा ही हैं। वे जो आपके गले में कंठी धारण करवाते हैं, वह ही तो आपको धनावंशी होने का अहसास करवाती है। आप कब अपने में धनावंशियत का अहसास रखते हैं? आपने तीन पीढी से

महंत में दिलचस्पी नहीं ली, उनके पास नहीं बैठे। महंत को अजूबा समझते रहे। कहावत है-मैं देवी को जानूं नहीं-देवी मेरे को जाने नहीं। महंत कोई सिंघ तो होते नहीं जो निकट जाते ही खा जाएंगे। उनसे घृणा करने की बजाय, मानवीय दृष्टिकोण से उनमें विकसित अटपटी मानसिकता को समझने की चेष्टा करो। एक अनपढ, अबोध बालक को आपने महंत की गद्दी पर बैठा दिया और उसे एकाकी बना दिया। उसे जो उच्च कोटि का धार्मिक माहौल देना था, वह दिया नहीं। उसे विद्वान बनाने का प्रयास किया नहीं। ऐसी विचित्र स्थिति से ऊब

सत्य परेशान हो सकता है, मगर पराजित कभी नहीं होगा।

कर, व्यथित होकर मनोरोगी होने की बजाय कुछ महंतों ने विवाह कर लिए। गृहस्थी के मोह और जंजालों से हम भली प्रकार परिचित हैं। दायित्वों को निभाते निभाते सारी महंतई निचुड़ जाती है और एक अपराध बोध भी कचोटता रहता है कि वह कैसा महंत है, उसने ब्रह्मचर्य को खंडित कर दिया। महंत–संज्ञा के सभी पहलुओं पर चिंतनशील जनों को सोचना पड़ेगा। उनके पास जाना पड़ेगा, उनसे अपेक्षा रखते हैं तो उनके प्रति हमारे दायित्वों को भी जानना पड़ेगा। बहुधा–हम महंतों के प्रति बिना विचार किए असहिष्णुता के भाव प्रकट करते रहते हैं और अपनी उदात्त जिम्मेदारी से बचने की कोशिश करते रहते हैं। जो भी हैं––जैसे भी हैं, महंतों को इकट्ठा कर उनसे बात करें। दोषी तो हम हैं–हम अन्य जाति के साधुओं और महंतों को अपने कार्यक्रमों में बुलाते रहते हैं, पर अपने महंतों का एक भी सम्मेलन नहीं किया। धनावंश की महंत परम्परा के समाप्त होने के लिए तो हमें कोई प्रयास ही कहां करना पड़ रहा है। एक– एक महंत द्वारे बंद होते जा रहे हैं। अब बचा ही क्या है? पर ऐसा होना घातक है। जब धनावंश–एक सम्प्रदाय बना तो–महंत द्वारे किसी मजाक के तहत कायम नहीं किए गए। रामानंदीय रामावत सम्प्रदाय के 36 द्वारे हम से पहले बने और यह परम्परा खूब फैली। हमारे अनेक धनावंशी जब रैवासा के महंत राघवाचार्य को बुलाते हैं तो क्या उनके मन में नहीं आती कि उनके स्वयं के सम्प्रदाय में कोई ऐसा विद्वान महंत हो। जब हाथ के फोड़ा हो जाए तो कहेंगे, हाथ बेकार हो गया, तोड़ दो, काट दो। यह क्या समझ है? जाटों से पांच सौ वर्ष पहले निकले हो, महंत–मंदिर और दूसरी साम्प्रदायिक परम्पराएं ही नहीं रहेंगी तो कहां से वैरागी रह जाओगे? जरा गहराई से सोचो भाई लोगो। सिस्टम बीमार है तो सही करो।

●●●●●

हमारा धनावंश बंध गया अभिमान की जंजीरों में

गणपतदास स्वामी-गुसांईसर बड़ा

हमारे धनावंश की स्थिति इस निचे लिखे कथा प्रसंग से ज्यादा अलग नहीं है। हम धनाजी के होते हुए भी धनाजी को पहचानते और मानते नहीं हैं। कथा इस प्रकार है। कोई राजस्थानी आदमी आसाम जैसे दूर के प्रांत में रहता था। उसका वहां उद्योग धंधा था। उसके संतान न होने के कारण वह अपनें छोटे भाई के दस साल के लड़के को अपने पास ले गया और अपने बेटे का अधिकार दे दिया। लड़का बीस पच्चीस वर्ष का हुआ तो उसका विवाह वहीं कर दिया गया। वहां का सब काम धंधा उसको सौंप दिया गया। कुछ समय बाद उसके वे मां बाप संसार से रवानगी कर गये। उसका काम धंधा भी अच्छा चलता था, व उसके बाल बच्चे भी थे। एक बार उसके गांव वाले मां बाप ने आपस में विचार किया कि हमारे बड़े बेटे को आज बीसों साल हो गए दूर रहते।काम धंधा ज्यादा होने व अकेला होने से उसे तो यहां आने को फुर्सत मिलती नहीं है। हम दोनों उसको, उसके बाल बच्चे व उसके काम धन्धे को जाकर देखें्। वे दोनों तीर्थों के माध्यम से गये। सुविधा के अनुसार तीर्थयात्रा करके आये अपने बेटे के शहा उसके बूढ़े पिता ने उसकी मां को एक धर्मशाला में ठहराया और आप निकले शहर में अपने बेटे का मकान ढूंढने। बड़ा शहर था ही सारा दिन लग गया पहुंचने में्। बेटे ने दूर से ही आते देखकर अपने पिता को पहचान लिया। उसके मनमें अभिमान तो था ही कि मैं बहुत बड़ा कारोबारी हूं। उस समय उसके मन में पिता के प्रति दुर्भाव हुआ कि इनके जैसे साधारण राजस्थानी धोती कुर्ता की वेषभुषा को देखकर तो सब कोई मेरी हंसी उड़ाएंगे,मेरी कद्र कम हो जायेगी। पिता बड़ा हर्षित हुआ बेटे को देखकर पर बेटे ने पिता के लायक आदर नहीं किया। न उठकर पैर छुए न प्रमाण किया। कुछ औपचारिक रूप से गांव की बातचीत पूछी तब पिता को विश्वास हुआ कि मुझे पहचान तो रहा है। इतने में कार्यालय के किसी सेवक ने पूछ लिया कि सेठजी ये महाशयजी कौन हैं तो उसने उतर दिया कि ये तो हमारे गांव के हैं। तब समझे उसके पिताजी। वे दो चार मिनट में ही उठे खड़े हुए पर बेटे ने कुछ नहीं कहा तब उन्होंने उस आदमी को सम्बोधित करते हुए कहा कि आपके सेठजी तो मुझे नहीं मानते पर मैं हूं तो इसको जन्म देने वाली माता का पति। वे चल पड़े वहां से। मन में सोचा अगर इसकी मां साथ में होती तो उसको बड़ा दुःख होता। नौकर चाकर सब छुप छुप कर बात कर रहे थे। कैसा आदमी है पिता से भी नहीं चूका। कोई कोई नें मुंह पर ही खरी खोटी सुना दी। बाजार में चर्चा फैल गई सबके मन से उतर गया। बाजार से उधारी मिलने से रह गई्। उधार दिये हुए माल के पैसे अटक गए्। मजदूरों ने अपना हिसाब ले लिया। काम ठप्प हो गया। घाटा छा गया। गांव में मां बाप को खबर मिल गई थी कि इस स्थिति में आत्महत्या कर सकता है। माँ का ह्रदय बड़ा कोमल होता है पति को किसी प्रकार राजी करके अपने दूसरे बेटों से मदद लेकर पहुंचे। वहां अपने बेटे की सहायता करके उसका फिरसे काम शुरू करवाया। बेटा भी बहुत रोया पर माता पिता ने धीरज बंधवाया। क्या धन्नावंस की हकीकत कुछ ऐसी ही नहीं है?

लोगों से डरना छोड़ दो, इज्जत ऊपरवाला देता है लोग नहीं।

झाड़ेली गांव का धनावंशी ब्यौरा

प्रस्तुति
प्रेमदास स्वामी–झाड़ेली

झाड़ेली गाँव नागौर जिले के जायल तहसील में नागौर–लाडनूं रोड पर है। नागौर से 35 किमी पूर्व में स्थित है। यहाँ धनावंशी स्वामियों के 33 घर हैं।
संपर्क सूत्र – श्री भींवदासजी भांभू –9799225516, लालदासजी बुगालिया– 99830 08590, कानदास जी तेतरवाल –97847 14365
नौकरी पैसा – अधिकांश लोग खेती से जुड़े हुए हैं । यहां के धन्नावंशी खेती बाड़ी के लिए काफी जाने जाते थे। लेकिन अब ज्यादातर डोली भूमि के अंतर्गत आती है। कुल करीब 700 बीघा में से 500 बीगा डोली भूमि है।
कुछ लोग सरकारी नौकरी में हैं जैसे कि–
1. भंवरलाल पुत्र श्री गणेश दासजी बुगालिया जलदाय विभाग पीलीबंगा में कार्यरत्त
2. रामनिवास पुत्र श्री गोकुलदास जी तेतरवाल, लेक्चरर सरकारी स्कूल झाड़ेली
3. दिनेश पुत्र श्री कानदास जी तेतरवाल, स्टेशन मास्टर मुम्बई, भारतीय रेल
4. दिनेश पुत्र श्री भंवरलाल बुगालिया, नर्सिंग ऑफिसर, एम्स, जोधपुर
कुछ लोग प्राइवेट क्षेत्र में है जैसे कि– 1. प्रेम दास पुत्र स्व. श्री देवदासजी भांभू, सेमसंग में इंजियनियर पद पर कार्यरत, दिल्ली

वक्त को वक्त देने से सब कुछ ठीक हो जायेगा।

निम्न गांवों में इन नखों (जातिय शासन) के धनावंशी निवास करते हैं।

सोमासर–सिहाग––मंडा
पनपालिया–सारण, खोत, सिहाग, गोदारा
कंवळासर–थोरी
गारबदेसर–भट्टेसर, थालोड़, ढाका, सारण
कालू–कालेरा, गोदारा, ढाका, जाखड़
कपूरीसर–गोदारा
शेखसर–गोदारा (लगभग) 125 घर। शेखसर–गोदारा जाति के जाटों की राजधानी रहा है। इसलिए यहां धनावंशी एकमात्र गोदारा जाति से ही है। पूरे देश में गोदारों का मूल निकास, शेखसर और लाधडिया से रहा है।
खोड्याला–गोदारा
आडसर (कालू के निकट)–खोत
सहजरासर–भोबिया, गोदारा, ढाका, मूंड
खारियो कल्याणसर–मूंड
कुजटी–कालेरा
खारी–मूंड
नाथवाणा–धनावंशी स्वामियों के चार सौ घरवाला बड़ा गांव––मूंड, सारण, तेतरवाल,

2. ओम प्रकाश पुत्र श्री भींवदास जी भाम्भू, बीपीओ, दिल्ली
3. राम पुत्र भंवरलाल भाम्भू, जूनियर इंजीनियर अजमेर, इनके अलावा ज्यादातर युवा वर्ग बाहर काम कर रहे या फिर कुछ लोग अपना निजी व्यवसाय करते हैं।

जनसंख्या

झाड़ेली में भांभू – 4 घर, बुगालिया – 20 घर, तेतरवाल– 9 घर है । संख्या में बात करे तो भाम्भू करीब 21, बुगालिया 90 व तेतरवाल करीब 40 लोग हैं। कुल मिलकर 150 के आसपास जनसंख्या हैं।

मंदिर

यहां ठाकुर जी का काफी पुराना मंदिर है जिसका पिछले साल पूरे गाँव के सहयोग से बहुत ही भव्य जीर्णोद्धार हुआ।

इतिहास

यहां पर सबसे पहले एक तेतरवाल परिवार था। उसमें गिरधारीदासजी व सांवल दासजी थे। गिरधारीदासजी के सिर्फ 7 पुत्रियां थी। कोई पुत्र न होने की वजह से वृद्धावस्था में उनकी देख भाल के लिए उनकी 5 पुत्रियां अपने पतियों के साथ यहां झाड़ेली में ही रहने लग गयी थी। इसकी दूसरी वजह यहां अच्छी खेती होनी थी। उनमें से स्व. श्रीमती पेमीदेवी जो कि सुनारी भाम्भू परिवार में स्व. श्री हरिदास जी के साथ परणाई हुई थी वह अपने पति के साथ यंहा आ गयी थी। उनकी ही संतान श्री भींवदास एवम श्री स्व. देवदास जी के परिवार यहां है। इनके साथ स्व. श्रीमती मोहनी देवी भी अपने पति स्व. श्री मूल दासजी भांभू , सुनारी के देहांत के बाद अपनी बहन के साथ यहीं रहने लगी। इनके सिर्फ 2 पुत्रियां ही थी इसलिए इन्होंने भींवदास जी को अपने पुत्र स्वरूप ही माना। इसके अलावा स्व. श्रीमती धनीदेवी के पति स्व. श्री बद्रीदासजी भांभू सुनारी की शादी के कुछ ही साल बाद स्वर्गवास होने से वह अपने पिता के घर ही रहने लगी। बाकी 2 बहने स्व. श्रीमती धापी देवी पत्नी स्व. श्री खूमदास जी बुगालिया सारंगसर तथा स्व. श्रीमती हीरा देवी पत्नी स्व. श्री धुंकल दासजी बुगालिया सारंगसर भी यहां झाड़ेली में ही रहने लग गये। इनके साथ स्व. श्री माधोदास जी जो कि खूमदास जी के भाई थे वह भी यहां आकर बस गए। अभी सारे बुगालिया इन तीन के ही वंशज हैं। सांवल दास जी के पुत्र स्व. श्री नारायणदास जी थे जिनके पुत्र श्री लालदास तेतरवाल है जो यंहा झाड़ेली से जसवंतगढ़ जाकर बस गए हैं। स्व. श्री नानूराम जी तेतरवाल गाँव सिंथल (नापासर, बीकानेर) से यंहा आकर बसे थे। अभी जो झाड़ेली गाँव में तेतरवाल है वे इन्ही के वंशज हैं। मंदिर की पूजा श्री गोकुलदासजी तेतरवाल कर रहे हैं जो इनके पौत्र हैं।

सिहाग, मंडा, दहिया।
अमरपुरा–खोड, सिहाग, सारण, ढाका, मंडा
ढाणी ईसरदास–सिंवर
सोनपालसर–सिंवर, बरोला
रंगाईसर–खोड, घिन्टाला
नारसरा–थोरी, चाहर
मालकसर–बरोला
मालसर–चाहर
हालासर–डेलू
भोजासर छोटा–झूरिया, महला, सारण, गोदारा, सिहाग
हरदेसर–गोदारा
बणियासर–सारण, निरवाळ
बिकमसरा–सारण
रामसीसर–घिन्टाला
हरियासर–निरवाळ,मंडा, गोदारा
गुसांईसर बड़ा–भूकर, खिलेरी
लाधडिय़ो–गोदारा, मूंड, सारण
उदरासर–मूंड, सारण, ढाका
आडसर छोटडिय़ो–सारण
उदासर–घिन्टाला
राजलवाड़ा–सारण
अमरसर–सारण
सवाई–राव
लाछड़सर–गोदारा, मंडा
ठुकरियासर–मूंड, घिन्टाला
धीरदेसर पुरोहितान–घिन्टाला

बड़े होते होते एक बात समझ आई कि खामोश रहना बयां करने से काफी बेहतर है।

भजन

• सीतारामदास परिव्राजक

बीज साधांनै देवां चबाय, हाथ में मौका आया है।
रातदिन रटस्यां हरि को नाम, मानुष तन ये पाया है।

1 बीजियो लेय संत हरषाया,ले प्रभुजी के भोग लगाया। संत गया सारो ही बीज चबाय,तृप्त अब हो गई काया है।
।।बीज साधांनै–––––––

2 बीज में ऐसा स्वाद था आया,मानो छप्पन भोग बणाया। प्रभु का पाया प्रेम प्रसाद ज्यूं भिलणी बोर खुवाया है।
।।बीज साधांनै–––––––

3 जीमकर राजी होग्या संत,आशीष दीन्ही होवे अनन्त। थारी सहाय करो भगवन्त, तैं भूखानै धपाया है।
।।बीज साधांनै–––––––

4 संता आशीष सुणाई मोटी,धना थारी भरो धान की कोठी। धनो चरणां शीश नवाय,संता ले कंठ लगाया है।
।।बीज साधांनै–––––––

5 धनो अब खेत बावण नैं आयो , बीजियो कांकरां को भर ल्यायो। खेत में देऊं कांकरा बुहाय,अनोखी प्रभु की माया है।
।।बीज साधांनै–––––––

6 धनो अब खेत बावण नै लाग्यो,बीजणो कङकङगङगङबाज्यो। पाड़ौसी केवै धनै नैं समझाय महीनों जेठ को भाया है।
।।बीज साधांनै–––––––

7 जेठ का बहाया नीपजै मोती,भायां सब करो मोकळी खेती। जमानों होसी पूरो धाय,चोखा सुगन मनाया है।
।।बीज साधांनै–––––––

8 धनो अब खेत बहाय घर आयो,अपणो खेत प्रभु नैं भुळायो। प्रभुजी कीजे आवै दाय,मैं तो थांरा हुकम बजाया है।
।।बीज साधांनै–––––––

9 सारै गांव अचम्भो छायो,धन्नों कोई बीज दूसरो ल्यायो। का कोई न्यारो हुयो सुवाव,बराबर मेह बरसाया है।
।।बीज साधांनै–––––––

10 खेत में बाजरी मोठ लहरावे,बेलां लम्बी पसरती जावे। कमी तो कोई बात की नांय,दिनो दिन लगे सुहाया है।
।।बीज साधांनै–––––––

11 प्रभुजी नौकर बणकर आया,डेरा मारग पास लगाया। सालग राम बतावै नाम,भक्त का मान बढाया है।
।।बीज साधांनै–––––––

12 डूंचै पर खड्यो मारै कलकारी,रात दिन करै खेत रखवाळी। सभी से करै प्रेम की बात,सबके मन में भाया है।
।।बीज साधांनै–––––––

13 धनो अब खेती लाट घर ल्यायो,सारो अन्न धन प्रभुनै भुळायो। संतांरी सेवा में दियो लगाय भरोसा मनमें आया है।
।।बीज साधांनै–––––––

14 जो नर भजन भक्त का गावे,
उसका पाप प्रलय हो जावै। घट में चेतन ज्योति जगाय,गरीब दास मन हरषाया है।
।।बीज साधांनै–––––––

रिश्तों की पाठशाला, अगर बनाये रखनी है, तो गणित और राजनीति विषय में हमेशा कमजोर होना बहुत जरूरी है।

आपके पत्र–आपकी भावनाएं

यह था अष्टम् अंक

हर किसी संप्रदाय का कोई न कोई गुरु अवश्य होता है। बिना किसी गुरु के मार्गदर्शन और निर्देशन बिना कोई पंथ संप्रदाय का होना समझ से परे है। मैं किसी काल्पनिक धनवंतरी या धनेष्ठा को गुरु नहीं मानता। क्यूं कि हमारे सभी गोत्र (नख) जाटों के हैं। हमारा संप्रदाय जाटों से प्रथक होकर धार्मिक और इश्वरोन्मुख साधजनों का है। क्यूं कि भक्तश्रेष्ठ श्रीधनाजी स्वयं जाट जाति के थे। वे ठाकुर जी महाराज के अनन्य भक्त थे। उन्होंने अपने समाज के सज्जनों को साध पन सिखाया। हमारा संप्रदाय अल्प संख्यक है,इससे भी लगता है कि ज्यादा प्राचीन नहीं रहा होगा, अन्यथा बहुसंख्यक होता। ऐसे ही कुछ प्रमाण अलग– अलग लेखकों ने भी लिखे हैं। यदि हम अपने समाज के गुरु को सम्मान देते हैं, यदि हम अपने साधपन को जीवित रखने का प्रयास करते हैं।तो इसमें मुझे नहीं लगता किसी जाट का प्रचार हो रहा है। रिश्ते नहीं आते या आपके लड़के के विवाह में बाधा आ रही है तो इसका एकमात्र कारण है कि आपका लड़का योग्य होना चाहिए। शिक्षित होना चाहिए। उसमे साधपन होना चाहिए अर्थात शुद्ध आचरण होने चाहिए। किसी भी प्रकार का कोई व्यसन नहीं होना चाहिए। रिश्ते दौड़कर आएंगे। लड़कियों को शिक्षा दी जाती है और वे यदि सुशिक्षित है तो उनके लिए योग्य लड़के ढूंढ़ना बड़ा दुष्कर हो गया है। यदि आप पढ़ने में रुचि नहीं रखते हो,यदि आप किसी शिक्षित व्यक्ति की बात भी नहीं सुनते हो, तो केवल आप दूसरों में कमियां ही निकाल सकते हो।बिना सिर पैर के आक्षेप लगा सकते हो। यह किसी का कुछ नहीं बिगाड़ पाएगा अपितु आप के अनभिज्ञ होने का प्रमाण मात्र रह जाएगा। किसी भी अनर्गल बात में ना फंस कर,किसी भी ईर्ष्यालु के बहकावे में न आकर अपने परिवार और समाज का भला सोचो।अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दो। उनको कोई अन्य समाज से प्रभावित होने से पहले अपने समाज के भक्तिमय गौरव की याद दिलाते रहो। ठाकुर जी महाराज का स्मरण करके अपना काम काज करो। यथासंभव घर में सभी को संध्या वंदन और प्रभात पूजा के लिए प्रेरित करें। किसी से ईर्ष्या न रखें। ठाकुर जी आपका सब मंगल ही करेंगे।जय ठाकुर जी की। जय गुरूदेव धनाजी महाराज की।

-श्रीधर स्वामी, सुजानगढ़

धनावंशी हित पत्रिका के सभी अंक पढ़े। यह पत्रिका हमारे समाज की शान है। हर अंक में पर्याप्त मेहनत तो रहती है, एक दृष्टि बोध भी रहता है–हमारे समाज के लिए। धनावंशी समाज आज देखा जाए तो किसी भी दृष्टिकोण से कम नहीं है। पढ़े–लिखे बुद्धिमान लोग हैं तो दूसरी तरफ उद्यमी और व्यवसायी लोग भी बहुत हैं। थोड़ीसी कमजोरी एक ही दिखती है, वह है समाज में एक सुदृ संगठन का न होना और एक आचार्य का न होना। सब समाजों के आचार्य हैं जो समाज को धार्मिक दृष्टि देने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। हमारे समाज में इस कमी को कैसे दूर किया जाए, इस पर समाज के गणमान्य जनों को बैठकर विचार करना चाहिए। हमारा समाज और अधिक धार्मिक आचरणों को धारण करे, हर धनावंशी को यह सोचना होगा। जय ठाकुर जी की ।

-प्रशांत स्वामी, फतेहपुर

जिसका भी साथ दो, खुलेआम दो विरोधी कहलाओगे, गद्दार नहीं।

पुस्तकें ज्ञान की पाठशालाएं कही गई हैं, तो यूं ही नहीं। वे सिर्फ हमें दुनिया–जहान की जानकारियां ही नहीं देतीं वे हमें मां, गुरु, मित्र और मार्गदर्शक बनकर सामाजिक जीवन की राह भी दिखाती हैं। पढ़ना ही हमें लिखना भी सिखाता है। धन्नावंशी हित पत्रिका के जुलाई और अगस्त अंक में एक से बढकर एक रोचक और समाज के लिए अनुकरणीय जानकारियां उपलब्ध करवाई गई है। यथा–

* धन्नावंश में परिव्राजक महंत की अवधारणा। * गलता गद्दी के संस्थापक श्री कृष्ण दास जी पयहरि।
* धन्नावंश के लिये संकीर्तन–महिमा। * धन्नावंशी माहसभा की आवश्यकता और समाज बन्दुओं के विचार।
* धन्नाजी महाराज की गुरु परम्परा।
* गुरुदेव चेतन जी द्वारा लिखित धन्नावंशी सम्प्रदाय का अध्याय प्रथम तो विशेष जानकारियों से भरपूर रहा।

पत्रिका प्रकाशन में विशेष सहयोगी सभी विज्ञापन दाताओं का भी शानदार योगदान प्रदर्शित होता है। धन्नावंशी हित पत्रिका समाज के लिए एक ज्ञान की ज्योति साबित हो रही है। पत्रिका से समाज की आधुनिक पीी को समाज की जड़ों से जोड़ने का प्रशंशनीय प्रयास किया गया है।

-अशोक सिंवर, शेरेरा

श्री धनावंशी हित मासिक पत्रिका अगस्त, 2020 का अंक बहुत अच्छा लगा। श्री चेतन स्वामी द्वारा विशद परिचर्चा धनावंशी महासभा की आवश्यकता पर अच्छी पहल है।समाज को गम्भीर मुद्दे पर मंथन करके निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए्। सभी विचारकों के विचार सराहनीय हैं।पत्रिका का अंक आगे भी प्रकाशित होते रहना चाहिए्। समाज में जाग्रति लाने के लिए साहित्य ही सहारा है।

-दुर्गाराम स्वामी, नाथवाणा

धनावंशियों ने धनाजी महाराज को क्यों नकारा हुआ है? यह भूल धनावंश में क्यों चल रही है? समाज के सामने यह एक बहुत बड़ा सवाल है। हमारा समाज इस सवाल का जवाब ढूंढने में मुंह चुराता है। मेरे हिसाब से तो हम डोळी के एहसान में एवं राजपूतों के दबाव में, धनाजी को नहीं मानते रहे।उस समय जाट जाति राजपूतों से डरती हुई जीवन व्यतीत करती थी। जाटों राजपूतों में कुछ राजनीतिक अनबन के कारण। जाटों की इस कमजोरी के कारण उनसे धनावंशियों की दूरी बन सकती है। यही कारण धनाजी से दूरी का कारण बन सकता है। इतिहास एक सबसे बड़ा न्यायालय होता है पर यह अधिकतर न्याय के साथ न होकर ताकत के साथ खड़ा होता है, यही कारण है धनाजी महाराज से दूरी है और यदि अन्य कोई साम्प्रदायिक कारण है तो आप बताएं?

-सीतारामदास परिव्राजक

धन्ना वंशी हित पत्रिका के जुलाई और अगस्त के अंक मिले, आभार। आपके द्वारा लिखित (1) धन्ना जी महाराज की गुरु परंपरा।(2) धन्ना वंशी संप्रदाय के इतिहास का प्रथम अध्याय को पत्रिका में छापने से हजारों समाज बंधुओं को अपनी ऐतिहासिक जानकारी मिली है, जिससे समाज में एक नई जागृति आएगी। दोनों अंको में बहुत ही समाज हितेषी अनुकरणीय जानकारियां उपलब्ध कराई गई है। सभी बिंदुओं पर समाज बंधुओं ने अपने विचार बहुत ही अच्छे एवं सुंदर ढंग से प्रस्तुत किए हैं। इस पत्रिका के माध्यम से एवं सोशल मीडिया पर आप के अथक प्रयासों से धनावंश के पंथ प्रवर्तक गुरुदेव धनाजी महाराज के प्रति समाज में गहरी आस्था भक्ति जाग रही है। हम आपके प्रयासों को नमन करते हैं। सभी समाज बंधुओं को जिन्होंने अपने विचार समाज हित के लिए रखें उन को तहे दिल से धन्यवाद एवं आभार। आपके द्वारा चलाई गई धनावंशी हित पत्रिका अनंत काल तक अनवरत चलती रहे–यही कामना।?

-प्रेमदास स्वामी, खिंयाला

दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं, एक वो जो मौका आने पर साथ छोड़ देते हैं और दूसरे वो जो साथ देने के लिये मौका ढूंढ लेते हैं।

श्री धनावंश हित में विज्ञापन सहयोग करने वाले धनावंशी बंधु

1. श्री रामचंद्र स्वामी, स्वामियों की ढाणी
2. श्री रघुवीर आनन्द स्वामी, अहमदाबाद
3. श्री सुखदेव स्वामी, अहमदाबाद
4. श्री लक्ष्मणप्रसाद स्वामी, पलसाना
5. श्री पदमदास स्वामी, बीदासर
6. श्री गोपालदास स्वामी, पालास
7. श्री गोविन्द स्वामी, हैदराबाद
8. श्री श्रवणकुमार बुगालिया, दिल्ली
9. श्री भागीरथ बुगालिया, दिल्ली
10. श्री गोपालदास महावीर स्वामी, थावरिया
11. श्री बृजदास स्वामी पुत्र श्री सीतारामदास परिव्राजक, सूरत
12. श्री ओमप्रकाश स्वामी, पाली
13. डॉ. घनश्यामदास, नोखा
14. श्री मनोहर स्वामी, अजीतगढ़
15. श्री गुलाबदास स्वामी, जोधपुर
16. श्री बनवारी स्वामी, स्वामियों की ढाणी
17. श्री त्रिलोक वैष्णव, जोधपुर

उपरोक्त सभी धनावंशी बंधुओं का आभार। अन्य जनों से भी निवेदन है कि इस पत्रिका के सुचारु प्रकाशन हेतु अपना विज्ञापन सहयोग प्रदान कर कृतार्थ करें।–प्रकाशक

पत्रिका के विशिष्ट सहयोगी

सांवरमल स्वामी, आबसर
अर्जुनदास स्वामी, हरियासर
देवदत्त स्वामी, सूरत
लालचन्द स्वामी, धोलिया
बजरंगलाल स्वामी, लालगढ़
प्रेमदास स्वामी, खिंयाला

श्री धनावंशी हित

यह पत्रिका धनावंशी समाज की एकमात्र पत्रिका है। कृपया इसके प्रचार–प्रसार में अपना योगदान प्रदान करें।

- पत्रिका में विज्ञापन, बधाई संदेश, सूचना, समाचार तथा रचनाएं भिजवाकर अनुगृहीत करें।
- यह अंक आपको कैसा लगा? अपनी राय से अवगत करवायें।
- पत्रिका का सालाना शुल्क 200/– रुपये है। कृपया सदस्य बने।
- **पता–श्री धनावंशी हित, धनावंशी प्रकाशन, कालू बास, श्रीडूंगरगढ़–331803 (बीकानेर) ⁎ मो.: 9461037562**

हमारे बहुत सारे धनावंशी मित्र महंत का नाम आते ही नाक सिकोड़ने लगते हैं। जबकि रोग जिस अंग मे हुआ है, दवा भी उसी अंग की करनी पड़ेगी। सम्प्रदाय है तो महंत उसकी अनिवार्य कड़ी है। इसलिए महंत को दरकिनार कर सम्प्रदाय नहीं रखा जा सकता। साधुओं में कोई गरिमा गमा दे,तो साधु संज्ञा की गरिमा थोड़े ही जाती रहती है? साधुत्व के मूल्य तो सदैव ही उच्च रहेंगे। अगर महंतीय व्यवस्था पंथ की गरिमा के अनुकूल नहीं है तो समाज को सबसे पहले अविलंब सभी महंतों की एक सभा बुलानी चाहिए और उन्हें उनका दायित्व बताना चाहिए।काम तो सभी एक एक कर करने होंगे। यह ठीक वैसे ही है जैसे कोई कहे–मंदिर तो रहे;पर पुजारी नहीं? रहने चाहिए। पुजारी खराब हो गया है, पथ चूक गया है तो उसे बदलो। महंत ही सम्प्रदाय के आधार होते हैं। पढे लिखे, विद्वान, समझदार महंत नहीं है तो महंत की नियुक्ति राजस्थान सरकार थोड़े ही करती है? आप ही तो चुनते रहे हैं महंत। व्यवस्था खराब है––मार्ग थोड़े खराब था?

तुलसीदासजी ने रामचरितमानस के प्रारंभ में ही काव्य के लिए कहा–

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि ।
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ

इसका अर्थ है कि वर्ण,अर्थ,रस,और छंद का सही अर्थों में संयोजन ही कविता है और काव्य रचना का उद्देश्य होता है–मंगल की सृष्टि करना।

धनावंश जैसे धार्मिक सम्प्रदाय में काव्य वर्णों को मंत्रात्मक स्वरूप दिया जाना आवश्यक है। काव्य में मंत्र की शक्ति होती है। काव्य की बार बार आवृति से वह मंत्र रूप में काम करने लगता है। आरती–स्तुति में शुभ भाव वर्णित होते हैं। हम अगर प्रति दिन धनाजी की आरती– स्तुति–पदों का गान करते हैं तो वे हमें आंतरिक शक्ति और शुभ परिणाम दे सकते हैं। हम धनावंशी अपने धार्मिक आचारों से हटते जा रहे हैं। यह सम्प्रदाय की मर्यादा को क्षति पहुंचाने वाली प्रवृत्ति है। विचार करें ।

सदस्यता शुल्क एवं अन्य भुगतान निम्न खाते में करें।

Dhanavanshi Prakashan
A/c No. - 38917623537
Bank - State Bank of India
Branch - Sridungargarh
IFSC code - SBIN0031141

जो व्यक्ति बुरे हालातों से गुजर कर सफल होता है, वो कभी किसी का बुरा नही कर सकता।

।।गुरुदेव श्री धनाजी महाराज को शत् शत वन्दन।।

रघुवीर आनन्द स्वामी (अहमदाबाद)

HARIOM

Steel Traders

ALL TYPES PIPE

IRON
&
STEEL MERCHANT

Contact
9375003924,
9327018427
02717-241876

Plot No. 12,
Shajanand Estate,
Near Gota Railway
Crossing, Gota,
Ahmedabad

Gmail : hariomsteeltraders2411@gmail.com
Website : www.hariomsteeltraders

M.: 94141-51941
96607-11041

शुभेच्छु

गोपालदास स्वामी गांव-पालास, तह. बीदासर

Ever Shine Granites

Sister Concern

EVERSHINE STONES

Bhinmal Road, Bhagli, Jalour-343001 (Raj.)

If Undelivered Return To
सम्पादक : श्री धनावंशी हित
धनावंशी प्रकाशन
कालू बास, पोस्ट : श्रीडूंगरगढ़-331803
जिला-बीकानेर (राज.) मो.: 9461037562

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक, सम्पादक चेतन स्वामी द्वारा धनावंशी प्रकाशन, कालू बास, श्रीडूंगरगढ़ द्वारा प्रकाशित एवं महर्षि प्रिण्टर्स, श्रीडूंगरगढ़ द्वारा मुद्रित ।